गंगा-पुस्तकमाला का अस्सीवाँ पुष्प

हिंदू-जीवन का रहस्य

लेखक

भाई परमानद एम्० ए०

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

जिल्ददार १।=)] संवत् १९८५ वि० [सादी ॥।=)
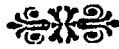
भूमिका

"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।"

"जो हठ राखै धर्म को, त्यहि राखै करतार।"

एक दिन अपने कमरे में अकेला बैठा मैं हिंदू-जाति के भाग्य पर विचार कर रहा था। कभी मेरे मस्तिष्क में इस जाति के अतीत काल का ध्यान आ जाता, मेरा मन सहस्रों वर्षों का समय लाँघ जाता, मैं सोचता, इसी पुण्य भूमि की पवित्र नदियों के तटों पर ऋषिगण वैदिक मंत्रों का गान करते थे। यह वही पुण्य-भूमि है, जहाँ वनों में पर्णकुटीर के अंदर बैठे ऋषिगण ब्रह्माण्ड की कठिन समस्याओं पर विचार किया करते थे। वे अपने विचारों को रहस्यमय सूत्रों के रूप में लिखकर हमारे लिये छोड़ गए हैं।

यह वही भूमि है, जहाँ के दार्शनिकों ने संसार के दर्शन-शास्त्र की नींव डाली है। इसी पवित्र भूमि में उस अद्वितीय आत्मा बुद्ध ने जन्म लिया था, जिसने सर्वव्यापी प्रेम और भ्रातृभाव को मानव-प्रकृति में ढालने का अनुपम दृश्य उपस्थित कर उसके प्रचार के लिये बौद्ध-धर्म की संस्था की स्थापना की थी।

यह वही पुण्य-भूमि है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जन्म ग्रहण कर बाल्यकाल से ही असुरों और राक्षसों का वध कर आर्य-जाति की रक्षा का व्रत ग्रहण किया था। इस जाति में जन्म ग्रहण कर उन्होंने आर्य-सभ्यता की पताका को न केवल दूर दक्षिण में ही, अपितु लंका तक फहराया था। आज दिन तक उनके और उनकी सहधर्मिणी माता सीता के परमोज्ज्वल चरित्र हमारी जाति के लिये आदर्श

रूप बने हुए हैं, और उनका नैतिक प्रभुत्व हमारे हृदयों पर बना हुआ है।

इसी पुण्य-भूमि ने उस अद्वितीय नर-रत्न को जन्म दिया था, जो बाल-मंडली में खिलाड़ियों का मुखिया था। जिसकी सुरीली वंशी की तान पर वहाँ के पशु-पक्षी मोहित थे। वीरता में जिसका लोहा बड़े-बड़े नर-पुंगव भी मानते थे, जिसका दार्शनिक ज्ञान संसार के दर्शन-शास्त्रों से ऊँचा है। जो आध्यत्मिक ज्ञान का सबसे बड़ा गुरु है, जो मनुष्यों और देवतों का शिरोमणि है, उस भगवान् कृष्ण को जिस भूमि ने जन्म दिया है, यदि वह इसके पश्चात् अन्य किसी मनुष्य को जन्म न देती, तो भी इसका जन्म सफल हो चुका था। भगवान् कृष्ण के सदृश व्यक्ति को उत्पन्न करने के लिये इस जाति को अपनी संपूर्ण शक्तियाँ उसी प्रकार ख़र्च करनी पड़ी हैं, जिस प्रकार एक हीरक-खंड को उत्पन्न करने के लिये एक भूमि को अपनी सब शक्तियों को व्यय करना पड़ता है। इस जाति ने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के समान मनुष्य पैदा किए। इस जाति ने विक्रमादित्य, प्रताप तथा शिवाजी के समान वीरों को जन्म दिया है। उन सबके चित्र मेरी आँखों के सामने एक-एक करके फिर गए। दूसरे क्षण में इस जाति की वर्तमान अवस्था का चित्र मेरी आँखों के सामने आ गया। मैं विस्मित था, क्या था, क्या हो गया, और अभी क्या होगा!

हिंदू-संतान की मुखाकृति देखकर यही संदेह होता है, क्या सचमुच यह उन्हीं पूर्वजों के वंशज हैं? न मुख पर वह तेज है, न शरीर में कोई बल का चिह्न। स्त्रियों की अवस्था उससे भी अधिक चिंताजनक है! जो आता है, वही बहका ले जाता है। कहाँ वह सीता, द्रौपदी और पद्मिनि थीं, जो प्रबल शत्रुओं का मुक़ाबला करने से भी नहीं झिझकती थीं, और अपनी मान की रक्षा के लिये अपनी जान तक पर खेल जाने के लिये तत्पर रहती थीं।

हमारे ब्राह्मण और क्षत्रिय भी नाम-मात्र को हैं। न ब्राह्मणों में त्याग है, न क्षत्रियों में वीरता। वैश्यों में न दान है, न व्यवसाय। सब नीच कार्यों में तथा वर्ण के मिथ्या अभिमान में फँसे मर रहे हैं। हमारे देश के राजा हैं, उन्हें न देश का ध्यान है, न धर्म की चिंता। प्रजा के दु:ख हृदय को दहला देते हैं। करोड़ों को पेट-भर खाना नहीं मिलता। लाखों नित्य भूख और रोग के कारण मृत्यु का शिकार बन रहे हैं। बच्चों की शिक्षा उन्हें देश और धर्म से विमुख कर रही है। जाति के नेताओं की ओर आँख उठाकर देखते हैं, तो और भी निराशा होती है। इस समय इस जाति की अवस्था उस असहाय हिरनी के समान है, जिसे एक ओर से शिकारी ने, दूसरी ओर से कुत्तों ने, तीसरी और चौथी ओर से अग्नि तथा जल ने घेर रक्खा है। उसका उस दिन का उत्पन्न हुआ बच्चा भी उसके साथ है। दीन हिरनी भाग नहीं सकती, रक्षा का कोई उपाय नहीं, केवल भगवान् उसके सहायक हैं।

मैं विचारों में मग्न था, हृदय में एक प्रश्न उठा, भारत का वह समय फिर कभी लौटकर आवेगा या नहीं? मुख से एक आह निकली। एक पंजाबी भाई का कहा हुआ यह पद मुझे याद आ गया—"ऋषियों के वो ज़माने इक बार फिर भी आ जा।" विचारों की अवस्था स्वप्न के समान थी। अचानक एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। उसने मुझे संबोधन कर कहा—"मैं बहुत दूर से आपके दर्शन के लिये आया हूँ। मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ, क्या आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करेंगे?" मेरी स्वप्नावस्था दूर हो गई। मैंने उत्तर दिया, मैं उपस्थित हूँ, कहिए आप क्या प्रश्न करते हैं। इसके पश्चात् जो वार्तालाप हम दोनों में हुई, वह मैं पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

प्रश्न—हिंदू-संगठन से आपका क्या अभिप्राय है? हम सैकड़ों वर्षों से इस देश में रहते आए हैं, परंतु इससे पूर्व हमने इसकी चर्चा कभी नहीं सुनी?

उत्तर—हिंदू-संगठन का अभिप्राय है कि हिंदुओं के अंदर एक संगठन (Organization) उत्पन्न कर उन्हें सशक्त बनाया जाय। सूत के धागे जब तक छिन्न-भिन्न रहते हैं, उनमें कोई बल नहीं रहता; परंतु जब उन्हें इकट्ठा बटकर रस्सी बना दी जाती है, तो उसे तोड़ना कठिन हो जाता है। हिंदू इस समय कच्चे धागों की तरह निर्बल हैं। इनमें एक बट की आवश्यकता है। संगठन से इस बट ही का अभिप्राय है।

प्रश्न—मुझे हिंदू-शब्द पर ही बड़ी आपत्ति है। हमने सुना है कि हिंदू-शब्द के अर्थ ही चोर, काला और काफिर हैं। हमें यह शब्द छोड़ देना चाहिए, आप इस शब्द का प्रयोग क्यों करते है ?

उत्तर—आपको हिंदू शब्द का जो अर्थ बताया गया है, उसमें केवल इतनी ही सचाई है कि जब यह देश विदेसियों के अधीन हो गया, तो उन्होंने अपनी घृणा प्रकट करने के लिये इस शब्द को घृणित बना दिया। इसी शब्द के अर्थों के बुरा होने का कारण हमारी अवनति और पराधीनता है, यदि हम उन्नति कर लें, तो यह शब्द ऊँचा बन जायगा।

प्रश्न—इस शब्द का वास्तविक उद्भव क्या है ?

उत्तर—यह शब्द वैदिक काल से चला आया है।। पंजाब की पाँच नदियों के साथ एक सरस्वती और दूसरी ओर सिंधु को मिलाकर इस देश को सप्त-सिंधु और इस देश के निवासियों को सिंधु कहते थे। भारत का फ़ारस से बहुत प्राचीन संबध है। फ़ारसी-भाषा में 'स' के स्थान में 'ह' हो जाने से इस देश का नाम हप्तहिंदू हो गया। इसी प्रकार यूनानी में 'ह' के गिर जाने से इस देश का नाम 'इंडो' इंडिया हो गया। फ़ारसी लोगों को धर्म-पुस्तकों में हमारे लिये 'हप्तहिंदवः' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। चीनी यात्रियों की पुस्तकों से भी जान पड़ता है कि 'हिंदू' शब्द गौरव-सूचक रहा है। भारत-

वासी अपने को आर्य ही कहते थे; परंतु जब मुसलमानी काल में हिंदी-भाषा का प्रचार हुआ, तो हिंदू-कवियों ने हिंदू-शब्द को आदर के योग्य समझ अपना लिया। हिंदी-भाषा के प्रयोग के साथ-साथ ही हिंदू-शब्द भी अधिक-अधिक प्रचलित होता चला गया।

प्रश्न—क्या हिंदू भी किसी मज़हब या मत का नाम है?

उत्तर—नहीं हिंदू किसी मज़हब अथवा मत का नाम नहीं है। हिंदुओं में सैकड़ों ऐसे मत हैं, जो परस्पर भिन्न-भिन्न होते हुए भी अपने को हिंदू ही कहते हैं हिंदू एक जाति का नाम है, और इससे उन लोगों का अभिप्राय है, जो इस देश में रहा करते थे और इस देश के निवासी थे।

प्रश्न—आप मत और जाति में क्या भेद समझते हैं?

उत्तर—मज़हब या मत से विशेष सिद्धांतों और नियमों में विश्वास रखने का अभिप्राय है। इन नियमों का मानना मत के अनुयायियों के लिये आवश्यक रहता है। जाति में इन सिद्धांतों के अतिरिक्त अन्य बातें भी होती हैं, जैसे एक देश के निवासी होना, देश को अपना समझकर उससे प्यार और उसकी रक्षा करना, एक भाषा का बोलना और उसके साहित्य को अपना समझना। इतिहास का एक होना अर्थात् विशेष-विशेष घटनाओं से गौरव और परस्पर सहानुभूति अनुभव करना। वंश-परंपरा का एक होना तथा विशेष व्यक्तियों को जातीय वीर समझ वीर-पूजा करना जातीयता के आवश्यक अंग हैं। मज़हब, मत या संप्रदाय किसी का कुछ हो, वह हिंदू ही है, और संसार की अन्य जातियाँ हिंदू-शब्द का इन्हीं अर्थों में प्रयोग करती हैं।

प्रश्न—आप सांप्रदायिक और राष्ट्रीय (वा जातीय) विचारों में से किसे अधिक महत्त्व देते हैं?

उत्तर—इसमें संदेह नहीं कि मज़हब या मत में मनुष्यों को एक

श्रृंखला में बाँध रखने की अद्भुत शक्ति है, परंतु जाति में समय के व्यतीत होने के साथ साथ नए-नए मज़हब अथवा संप्रदाय फूटते जाते हैं और जाति को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देते हैं, जो भी कोई नया मत या मज़हब पैदा होता है, वही इस बात का दावा करता है कि वह अन्य सब मतों को मिटाकर एक कर देगा। परिणाम यह होता है कि सैकड़ों में एक और की वृद्धि हो जाती है। राष्ट्रीयता से जो एकता उत्पन्न होती है, वह उत्तेजना-शून्य होने पर भी अधिक टिकाऊ और वास्तविक होती है। राष्ट्र में जो विचार-स्वतन्त्रता मनुष्य को मिलती है, वह मज़हब में मिलनी असंभव है। राष्ट्र में मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार सिद्धांतों पर चल सकता है, और विचारो-संकीर्णता के बंधन से छुट्टी पा जाता है। मज़हब में विचार-संकीर्णता एक आवश्यक अग है, और यही संसार के अनेकों युद्धों तथा रक्तपात का कारण है। मज़हब मनुष्यों में विचार और विश्वास के आधार पर भेद करता है; परतु राष्ट्रीयता का विचार इन भेदों को दूर कर एकता की नींव रखता है।

प्रश्न—क्या कोई अन्य विचार भी मज़हब या मत के समान एकता उत्पन्न कर सकता है ?

उत्तर—राष्ट्रीय भाव के विषय में यह कह देना पर्याप्त होगा कि अपने पूर्वजों के देश को मातृ-भूमि तथा पुण्य-भूमि मानना वह भाव है, जिसे यदि पूरा विकास मिले, तो मज़हब से अधिक एकता का कारण बन सकता है। इसी भाव के आधार पर सच्ची एकता और राष्ट्रीयता बन सकती है। जिस समय यूसफ़ अपने प्यारी मातृ-भूमि कानन से वहिष्कृत होकर मिसर का सम्राट् बना हुआ था, तब देश-प्रेम से विह्वल होकर ही उसने यह शब्द कहे थे कि मिसर के सम्राट् बनने से कानन की गलियों का भिक्षुक बनना कहीं अच्छा है। देश-प्रेम के भाव से पूर्ण होने पर हमें अपने देश की भूमि का एक-एक

कण पूजा के योग्य जान पड़ने लगता है। इस मिट्टी में उन महापुरुषों की भस्म मिली हुई है, जिन्होंने राष्ट्र के हित के लिये अपने जीवन उत्सर्ग किए थे। जापान की सारी उन्नति का कारण देश-प्रेम ही है। एक जापानी की दृष्टि में अपने देश का सम्मान उसकी अपनी कन्या, के सम्मान से कहीं अधिक प्यारा है। जापान को बुरा-भला कहने पर उसकी आँखों में ख़ून उतर आवेगा, और वह मरने-मारने पर तत्पर हो जायगा। इस बात में अमेरिका भी जापान का अनुकरण कर रहा है। अमेरिका के स्कूलों में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिक-शिक्षा नहीं दी जाती; परंतु प्रत्येक अध्यापक को स्कूल में कार्य आरंभ करने से पूर्व यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह प्रत्येक बालक को मातृ-भूमि के झंडे के सम्मान के लिये मरने-मारने के लिये तत्पर कर देगा।

प्रश्न—क्या इस देश में इस प्रकार की एकता का विचार पहले भी कभी रहा है?

उत्तर—यह कहानी कुछ लंबी है। पहले इस देश में न बहुत-सी जातियाँ थीं, न बहुत-से मत। यहाँ एक ही जाति थी, उसे चाहे 'हिंदू' कहते या 'आर्य'। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी एक जाति के अंग थे। इनके जीवन के उद्देश्य अपने को जाति की सेवा के लिये उपयोगी प्रमाणित करना था। अधिक समय बीत जाने पर जाति में अवनति के कारणों ने प्रवेश किया। भगवान् बुद्ध ने जाति को नए ढंग पर ढालना चाहा। उन्होंने व्यक्ति को प्रधानता दी। उनका विचार था, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्या आवश्यकता है, प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्म ही आगे-पीछे ले जाते हैं। उन्होंने सबके सामने निर्वाण का आदर्श रक्खा। उनका उपदेश था कि यह संसार दुःख का स्थान है, इसके त्याग में और इच्छाओं के दमन में ही सुख-शांति है। व्यक्तिगत लाभ के विचार में हिंदू जातीयता को भूल गए और व्यक्तित्व में ही लीन हो गए।

प्रश्न—व्यक्तिगत और जातीय जीवन में क्या अंतर है ?

उत्तर—वैदिक धर्म या सभ्यता की दृष्टि से मनुष्य के वैयक्तिक जीवन का कोई अस्तित्व नहीं। ब्राह्मण का सारा जीवन जाति के हित के लिये होता था। क्षत्रिय के जीवन का उद्देश्य युद्ध में प्राण-त्याग था, जो मनुष्य अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता था, वह पतित समझा जाता था, चाहे व्यक्तिगत दृष्टि से उसका जीवन कितना ही उच्च क्यों न हो। व्यक्तिगत कर्मों का प्रभाव एक व्यक्ति तक परिमित रहता है; परंतु जातीय कर्मों का प्रभाव संपूर्ण जाति पर पड़ता है। जयचंद्र-जैसा एक क्षत्रिय अपने एक काम से सारी जाति को नष्ट कर देता है।

प्रश्न—हिंदुओं को विशेषतः इस समय संगठन करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—अपना पिछला इतिहास देखने से हमें यह पता लगता है कि बहुत समय तक हिंदू दूसरी जातियों से भिन्न, एकांत और शांत जीवन व्यतीत करते रहे हैं। इन्हें दूसरी जातियों से किसी प्रकार का मुक़ाबला करने का अवसर नहीं पड़ा। इस शांतिमय जीवन के कारण इनकी मुक़ाबला करने की शक्ति का बिलकुल ह्रास हो चुका है। जब कभी इन पर कोई दूसरी जाति आक्रमण करती है, तो यह बिलकुल विवश और लाचार हो जाते हैं। इस जाति में सभी गुण हैं; परंतु संकट के समय एक होना इन्हें नहीं आता। यह संसार युद्ध-क्षेत्र है, यहाँ प्रत्येक व्यक्ति और समाज को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये लड़ना पड़ता है। यदि इस युद्ध में किसी जाति की अवस्था उस काँच के समान हो जाय, जिसकी टक्कर किसी पत्थर से लगी है, तो वह जाति स्वयं चूर-चूर होकर नष्ट हो जायगी। यह समय हिंदू-जाति की जीवन-मरण की समस्या के हल करने का है। इससे पूर्व भी यह जाति संकटों में पड़ चुकी है; परंतु अवस्था इतनी भयंकर

कभी न हुई थी। इस समय हमारा भविष्य स्पष्ट है। यदि हम इकट्ठे होकर इस आक्रमण को न रोकेंगे, तो हमारा अस्तित्व शेष न रहेगा।

प्रश्न—इस विचार के आजकल उत्पन्न होने का क्या कारण है?

उत्तर—योरप के पिछले महायुद्ध के समय से सारे संसार में एक जागृति फैल गई है। इस जागृति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा है। अँगरेज़ों के नेतृत्व में लड़ते समय मित्र-दल का यह दावा था कि निर्बल शक्तियों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये लड़ रहे हैं। इस बात का खुला प्रचार होने से भारत को भी कुछ आशा हुई, और देश में राजनीतिक आंदोलन आरंभ हो गया। इन दो-तीन वर्षों में भारतवासी अपने प्राकृतिक अधिकारों के लिये लड़ते रहे। हिंदू और मुसलामन मिल गए। परंतु मुसलमानों के असंतोष का प्रधान कारण अँगरेज़ों का टर्की के विरुद्ध लड़ना था। उनके हृदय में अपने देश के लिये इतना प्रेम न था, जितना अपने मजहब के लिये था। वे हिंदुओं के साथ मिलकर स्वराज्य आंदोलन में नाम लेने के लिये तत्पर हुए; परंतु उनके हृदय में अपने मज़हब के लिये भी उत्साह और उत्तेजना बढ़ती गई। मालाबार और मुलतान की घटनाओं से उनके हृदय में हिंदुओं के लिये भ्रातृ-भाव बढ़ने के स्थान में विद्वेष बढ़ गया। हिंदुओं ने भी स्पष्ट अनुभव कर लिया कि उनका भला तभी है, जब वे परस्पर संगठित होकर शक्ति उत्पन्न करें। उन्हें इस बात का पता लग गया कि उनके पड़ोसी कठिन समय में उनका साथ छोड़ जायँगे। स्वराज्य के आंदोलन के लिये भी हिंदुओं को सुसंगठित तथा सशक्त होने की आवश्यकता है। अपने पड़ोसियों के भय की आशंका से हिंदुओं का ध्यान अपनी स्त्रियों की असहाय अवस्था अछूतपन, अपने तीर्थों की दुरवस्था और शारीरिक निर्बलता आदि व्याधियों की ओर गया है। ये व्याधियाँ हिंदुओं को घुन के

समान चुपचाप भीतर-ही-भीतर खोखला किए जा रही हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि परस्पर मिलकर इन व्याधियों के निवारण का प्रयत्न करें।

प्रश्न—इस आंदोलन के विषय में कुछ विस्तार से कहिए?

उत्तर—इस समस्या को भली प्रकार समझने के लिये आप पंजाब की अवस्था पर ध्यान दीजिए। पंजाब में अन्य प्रांतों की अपेक्षा मध्यम श्रेणी के मनुष्य अधिक और संपन्न हैं। यहाँ हिंदुओं तथा मुसलमानों की संख्या में भी थोड़ा ही भेद है। इन दोनों संप्रदायों की आपस में उतरा-चढ़ी का दृश्य देखना हो, तो यहाँ बहुत स्पष्ट दिखाई दे सकता है। जीवन-निर्वाह का प्रश्न कठिन होते जाने से यह उतरा-चढ़ी भी इसी प्रश्न पर हो रही है। पंजाब के हिंदू अधिकतर साहूकारी और ज़मींदारी किया करते थे। भूमि-विनिमय (Land Alienation Act) कानून द्वारा हिंदुओं का भूमि ख़रीदने का अधिकार छीन लिया गया, और ज़मींदारी-बैंक खोलकर उनके साहूकारी को भी धक्का पहुँचाया गया। हिंदू अपने बच्चों को स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाकर सरकारी नौकरी दिलवाते थे, परंतु अब दफ़्तरों में भी यह आज्ञा स्पष्ट तौर पर जारी हो गई है कि सबसे पहले नौकरी मुसलमानों को ही दी जाय। पुलीस और फौज़ में हिंदुओं के लिये स्थान नहीं। सरकारी स्कूलों में अध्यापक भी सब मुसलमान ही भरती किए जाते हैं। हिंदू हलवाई तथा बजाज़ी का काम किया करते थे, परंतु अब एक ऐसी मुसलिम अंजुमन का चर्चा सुना है, जिसका काम चंदे द्वारा धन एकत्र कर मुसलमानों द्वारा ऐसी दुकानें खुलवाना है। बढ़ई और लुहार के पेशे आज स्वतंत्र रूप से निर्वाह चलाने के सबसे उत्तम साधन हैं। यह भी मुसलमानों के ही हाथ में हैं। हिंदुओं को इस प्रकार के कामों से घबराहट होती है, और वे अपनी संतान को ऐसे कामों से दूर रखते हैं। खेती का काम उत्तम

होने पर भी कठिन है, और हिंदुओं के भाग्य में नहीं। एक और छोटा-सा उदाहरण लीजिए, लाहौर-शहर में प्रायः एक हज़ार के लगभग जिल्दसाज़ हैं। इनकी आमदनी प्रति दिन डेढ़ रुपए से अढ़ाई रुपए तक है। हिंदू-नवयुवक हाथो में प्रार्थना-पत्र लिए दफ़्तरियो की ड्योढ़ियों पर प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं; परंतु इन कामों को हाथ में लेने के लिये तैयार नही। जिस अवस्था में एक बलवान् तथा सुसगठित समाज की ओर से दूसरी निर्बल समाज को निर्वाह के साधनों से रहित होकर भूखा मारने का प्रयत्न किया जाय, और निर्बल समाज बिलकुल बेख़बर तथा असंगठित बनी रहकर अपने भविष्य की चिंता भी न करे, तो उस समाज की रक्षा सर्वथा असंभव है।

प्रश्न—हिंदुओं को अनेक भिन्न-भिन्न संस्थाओं में आर्य-समाज, सनातनधर्म इत्यादि के परस्पर मिलकर कार्य करने की क्या कोई संभावना नहीं?

उत्तर—यह कहना तो कठिन है कि ये संस्थाएँ कभी मिलकर एक हो जायँगी। प्रायः सभी समाजों में सर्वसाधारण का आचरण उसके नेताओं की नीति द्वारा परिचालित होता है। भारत के नेताओं में सम्मान की भूख का परंपरागत रोग है। उन्हें सब संस्थाओं का एक हो जाना कभी नही भाता। चाणक्य ने अपने नीति-शास्त्र में लिखा है कि नायक के अभाव में जनता नष्ट हो जाती है, और नायकों की अधिकता भी जनता को नष्ट कर देती है। नेताओं की अधिकता तथा एक प्रभावशाली नेता का अभाव हमारा पुराना दुर्भाग्य है। यह सब कुछ होते हुए भी प्रत्येक जाति में जातीय सहानुभूति का भाव भी किसी-न-किसी अंश में पाया ही जाता है। सभी जगह कुछ ऐसे सज्जन वर्तमान हैं, जो देश-जाति के सच्चे हितचिंतक हैं। इसलिये आशा की जा सकती है कि सब समाजों के ऐसे व्यक्ति परस्पर के भेद-भाव को त्याग, जातीय संगठन के लिये तैयार हो जायँगे।

प्रश्न—देश के लिये जब कांग्रेस आंदोलन कर ही रही है, तब फिर हिंदू-संगठन की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज-प्राप्ति है। इस उद्देश्य में सफलता तभी हो सकेगी, जब हिंदू, मुसलमान, सिख तथा भारत के अन्य सभी सम्प्रदायों के लोग इसके लिये मिलकर प्रयत्न करेंगे। परस्पर की एकता के बिना यह प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। एकता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि सब लोग एकता की आवश्यकता को अनुभव करें, और उनमें एकता की प्रबल इच्छा हो। यदि इच्छा केवल मौखिक होगी, तो वह थोड़ा-सा प्रलोभन मिलने पर ही दब जायगी और एकता टूट जायगी। कांग्रेस का इतिहास इस बात का साक्षी है कि राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाले सभी लोग हिंदू थे। सर सैयद अहमद के समय से मुसलमानों ने अपना हित कांग्रेस से दूर रहकर गवर्नमेंट का साथ देने में ही समझा है। हिंदुओं के हृदय में इस देश तथा इस देश के निवासियों के साथ वास्तविक प्रेम है। मुसलमानों के हृदय में अरब, मक्का, मदीना तथा उन देशों के निवासी अपने मज़हबी भाइयों के प्रति ही विशेष अनुराग है। मुसलमान हिंदुओं को अपने अन्य मज़हबी भाइयों के समान कभी नहीं समझते। उनका मज़हब तथा उनकी धार्मिक पुस्तक उन्हें अन्य मत के मनुष्यों को लूटने तथा मारने का उपदेश देती हैं। जब कभी भी उन्हें इसके लिये अवसर मिलता है, वे इससे लाभ उठाने में संकोच नहीं करते। लूट-मार के प्रलोभन तथा धार्मिक जोश के संयोग से एक भयंकर उत्तेजना मुसलमानों के दिल में पैदा हो जाती है। जब तक हिंदू इस उत्तेजना का मुक़ाबला करने में असमर्थ रहेंगे, वास्तविक एकता का होना असंभव है। इसलिये हिंदू-संगठन ही वास्तव में स्वराज्य-प्राप्ति का मुख्य साधन है। हिंदू-संगठन कांग्रेस से अलग होता हुआ भी इसके विरुद्ध न होकर पक्ष में है,

और कांग्रेस को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये संगठन का होना अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न—तो क्या हिंदू-संगठन से आपका अभिप्राय हिंदुओं को मुसलमानों के विरुद्ध तैयार करना है?

उत्तर—नहीं, हिंदू-संगठन का यह अभिप्राय कभी नहीं है। वस्तुतः हिंदुओं और मुसलमानों की भलाई दोनों के बलवान् होने में है। हिंदुओं और मुसलमानों के झगड़े का कारण यह है कि मुसलमानों में कुछ लोग ऐसे हैं, जो थोड़ी-सी उत्तेजना मिलने पर लूट-मार के लिये तैयार हो जाते हैं। हिंदू कमज़ोर होने से उनका शिकार बनते हैं। दूसरे मुसलमानों में अपने भाइयों के प्रति सहानुभूति रहने से यह झगड़ा जंगल की आग की तरह बढ़कर सारे देश में फैल जाता है। यदि हिंदू कमज़ोर न रहें, तो झगड़ा उठे ही न।

लूटना बुरा है और लूटनेवाले दोषी हैं; परंतु इसमें बड़ा अपराध लुटनेवालों का है। निर्बलता मृत्यु का चिह्न है। निर्बलता से बड़ा अपराध संसार में दूसरा नहीं है। संगठन द्वारा इस निर्बलता को दूर करके हिंदुओं और मुसलमानों में भ्रातृ-भाव उत्पन्न करने का यत्न हमारा कर्तव्य है।

प्रश्न—परंतु इस विचार की सत्यता का प्रमाण क्या है?

उत्तर—हिंदू-महासभा काशी ने अपने निर्णय की भूमिका में यह लिखा है कि हम अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट कर देना चाहते हैं कि इस देश में सुख, शांति तथा स्वराज्य स्थापित करने के लिये भारत में निवास करनेवाली सभी जातियों में पारस्परिक एकता तथा प्रेम-भाव का दृढ़ संबंध स्थापित हो। इसलिये हम हिंदू-मात्र से यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि जिस समय वे जाति में संगठन उत्पन्न करने का प्रयत्न करें, तो इस बात का ध्यान रक्खें कि उनका प्रयत्न देश-हित के प्रतिकूल तथा अन्याययुक्त न हो।

प्रश्न—यह संगठन किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—हिंदू-सगठन का एक ही उपाय है कि गाँव-गाँव और कसबे-कसबे में हिंदू-सभाएँ स्थापित की जायँ, और ज़िला-सभाओं द्वारा उनका संबंध प्रांतीय हिंदू-सभा से होकर अखिल भारतीय हिंदू-महासभा से हो जाय और संपूर्ण सभाएँ माला के मणियों की भाँति एक लडी में बंध जायँ।

प्रश्न—इन सभाओं से क्या लाभ होगा ?

उत्तर—सबसे बड़ा लाभ इन सभाओं से यह होगा कि हिंदुओं में एक जातीयता का भाव उत्पन्न हो जायगा, और वे एक जाति के ढंग से अपना हित-अहित सोचने लगेंगे। यह विचार कि वे एक संगठित संस्था के अंग हैं, वह संस्था उनकी प्रतिनिधि है, और इस संस्था द्वारा निरधारित नीति पर चलना उनका कर्तव्य है, हिंदुओं में जातीयता का भाव उत्पन्न कर उन्हें एक सूत्र में पिरो देगा। अभी तक हिंदू प्रत्येक समस्या को वैयक्तिक दृष्टि-कोण से देखते हैं। उनमें जातीयता का विचार उत्पन्न होने के लिये यह आवश्यक है कि उनका दृष्टि-कोण जातीय हो।

प्रश्न—सभा-समाजें और बिरादरियाँ, जो इस समय भी काम कर रही हैं, क्या इस न्यूनता को पूरा नहीं कर सकतीं ?

उत्तर—यह सभा-समाजें थोड़े परिमाण में सामाजिक सहायता करने में सहायक हो सकती हैं; परन्तु सब समाजों को एक संगठन में बाँधने में बडी रुकावट है। भिन्न-भिन्न मतों की तरह बिरादरियाँ भी यही चाहती हैं कि उनके सदस्य अपनी बिरादरी के हित के लिये ही प्रयत्न करें, और इसी में वे जाति की भलाई समझती हैं। इन बिरा-दरियों की तुलना उस मनुष्य से की जा सकती है, जो यह कहे कि मैं अपनी संतान को विदेश भेजकर धन कमाने के योग्य बना रहा हूँ। यदि सारी जाति मेरा ही अनुकरण करे, तो जातीय उन्नति बहुत शीघ्र

हो सकती है। यदि यह मनुष्य जातीय हित की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करे, तो उसे मालूम हो जायगा कि केवल सरकारी नौकरी तथा वैयक्तिक सम्मान के लिये विदेश में रुपया भेजना जाति के हित के प्रतिकूल है।

प्रश्न—हिंदुओं का शोक तथा उत्सव के समय सम्मिलित होना क्या उनमें जातीयता का भाव उत्पन्न करने में सहायक नहीं हो सकता?

उत्तर—हिंदुओं के रीति-रवाज जातीय भाव की उत्पत्ति में सहायक नहीं हैं, प्रत्युत वे जातीयता को उन्नति में बाधक हैं। इन रीति-रिवाज़ों के कारण हिंदू अपनी बिरादरियों के बधन में जकड़े जाकर विवश हो गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है, हमारे पूर्वजों ने यह सब रीति-रिवाज़ केवल मनोरंजन के लिये ही चलाए थे। परंतु इस समय प्रत्येक हिंदू-परिवार का जीवन लडके-लडकियों के विवाह का ख़र्च जुटाने की चिंता ही में घुल-घुलकर नष्ट हो जाता है। इन रीति-रिवाज़ो से हमें कोई लाभ नहीं पहुँच रहा, प्रत्युत वे जातीय संगठन में रुकावट बन रहे हैं।

प्रश्न—क्या यह सभाएँ जलसों और प्रचारकों द्वारा संगठित की जानी चाहिए?

उत्तर—मेरी सम्मति में यह जलसे लाभदायक नहीं। हिंदू इन जलसों को भी एक प्रकार का उत्सव समझकर इनकी कामयाबी के लिये बहुत-सा धन व्यय कर देते हैं। यह उत्सव एक प्रकार का दिखावा ही है, और हिंदुओं में दिखावे का रोग पहले ही बहुत अधिक मात्रा में वर्तमान है। सचाई और वास्तविकता का प्राय हमारे सभी कामों में अभाव है। केवल दिखावे की तडक-भडक की ही अधिकता है। इस दिखावे ने हमारे धर्म तक को भी केवल दिखावे की ही वस्तु बना दिया है। हिंदू इन उत्सवों के दिखावे को जितना

शीघ्र छोड़ दें, उतना ही उनके लिये अच्छा है। आरंभ में शायद प्रचारकों के विना काम न चल सकेगा। परंतु मेरे विचार में प्रत्येक हिंदू को हिंदू-संगठन का प्रचारक होना चाहिए। यदि हम संगठन-जैसे सीधे-सादे और साधारण काम के लिये भी प्रचारकों का आश्रय लेंगे, तो सफलता हमसे बहुत दूर रहेगी। हिंदू-संगठन कोई नया मत नहीं है। इसलिये शास्त्रार्थों की आवश्यकता नहीं। न इसके समझाने के लिये बडे-बड़े व्याख्यानों की आवश्यकता है। यह किस हिंदू से छिपा है कि पाँचों उँगलियों को इकट्ठा कर देने से उनमें वह शक्ति आ जाती है, जो अकेले एक-एक उँगली में कभी नहीं हो सकती। जिस प्रकार प्रत्येक मुसलमान अपने मज़हब का प्रचारक है, उसी तरह प्रत्येक हिंदू को भी संगठन का क्रियात्मक प्रचार करना चाहिए।

प्रश्न—परंतु हिंदू-सभा की स्थापना से लाभ क्या हुआ है?

उत्तर—लाहौर में हिंदू-सभा की स्थापना हुए अभी थोडा ही समय हुआ है। इस समय में सभा ने अपने को ठीक रूप से व्यवस्थित करने के पश्चात् लाहौर म्युनिसिपल कमेटी के हिंदू-मत-दाताओं (वोटर्स) की सूची की ओर ध्यान दिया। आपको यह जानकर विस्मय होगा कि इस सूची में दस फी सैकड़ा भी हिंदू-मत-दाताओं के नाम नहीं थे। हिंदू-सभा ने इस काम के लिये स्वयंसेवकों को नियुक्त किया। स्वयंसेवकों ने दिन-रात कठिन परिश्रम कर प्राय. एक सप्ताह में ही लगभग सारे हिंदू-मतदाताओं की सूची तैयार कर दी। म्युनिसिपल कमेटी के अधिकारियो ने पहले वचन देकर भी पीछे हमारा सूची को अस्वीकृत कर दिया। हिंदू-सभा ने नगर के गण्यमान्य सज्जनों को एकत्र कर म्युनिसिपल कमेटी से असहयोग करने का निश्चय कर दिया। दो मास के लगभग सभा इस कार्य मे लगी रही। इसके पश्चात् लाहौर में जाति-भूषण पंडित मदनमोहन मालवीयजी के सभापतित्व में एक पंजाब-प्रांतीय हिंदू-

सम्मेलन लाहौर में बुलाया गया। सम्मेलन कामयाब रहा, इसके अतिरिक्त पजाब के हिंदुओं ने सभा की आज्ञा का पूर्णरूप से पालन किया।

इसके पश्चात् सभा ने लाहौर के गली-मुहल्लों को एक सगठन में बाँधने का काम आरंभ किया। तीन सप्ताह तक ही यह काम हो पाया था कि लाहौर में प्लेग का प्रकोप हो गया। इस आपत्ति के समय भी हिंदू-सभा ने प्रशंसनीय काम किया। निर्धन तथा निस्सहाय लोगों के घरों में जाकर उनकी सुध लेने, उनके लिये औषध का प्रबंध करने और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अस्पताल पहुँचाने तथा मृतकों का विधिपूर्वक दाह-संस्कार करने में सभा के स्वयंसेवकों ने अद्वितीय निर्भयता तथा साहस का परिचय दिया। इस पवित्र कार्य में हमारे उन भाइयों की सहायता, जिन्हें हमारी जाति दुर्भाग्य से अछूत कहती है, विशेषतः उल्लेख के योग्य है। इसके पश्चात् अब सभा के सम्मुख प्रांत के हिंदुओं के संगठन का काम है।

प्रश्न—हिंदू-सभा के सम्मुख ऐसा क्या काम है, जिसके लिये हिंदुओं का संगठित होना आवश्यक समझा जाय?

उत्तर—अछूतोद्धार, शुद्धि, विधवा-सुधार, गोरक्षा, हिंदी-प्रचार, शारीरिक उन्नति, धर्मस्थान-सुधार इत्यादि सभी काम ऐसे हैं, जिनमें सभी विचारों के हिंदुओं का सम्मिलित होना सहज और आवश्यक है।

प्रश्न—हिंदू-सभा का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर—हिंदू-सभा के पाँच मुख्य उद्देश हैं।

(१) हिंदू-जाति में एकता तथा प्रेम-भाव का प्रचार करना और उन्हें एक ही शरीर के अंग जान संगठित करना।

(२) भारत में निवास करनेवाली सब जातियों में सद्भाव उत्पन्न कर भारत में स्वराज्य-स्थापना के उद्देश्य से एकता के लिये प्रयत्न करना।

(३) अछूत समझी जानेवाली जातियों सहित हिंदू-जाति के सभी अंगों की उन्नति करना।

(४) हिंदू-हित की सब स्थानों और अवस्थाओं में रक्षा करना।

(५) हिंदू-समाज की शारीरिक, शिक्षा-संबंधी, आर्थिक, समाजिक और राजनीतिक दृष्टि से उन्नति करना।

प्रश्न—अछूतोद्धार का काम तो कांग्रेस और आर्य-समाज कर ही रही हैं।

उत्तर—कांग्रेस अछूतोद्धार का काम अपने हाथ में नहीं ले सकती. क्योंकि कांग्रेस में हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी मतों का समान भाग है। महात्मा गांधीजी ने भी यह स्पष्ट कह दिया है कि अछूतोद्धार हिंदुओं का ही कर्तव्य है। एक हिंदू केवल दूसरे हिंदू से ही यह कह सकता है कि यदि वे अछूतों को अपना भाई नहीं बनावेंगे, तो वे दूसरे मत में सम्मिलित होकर गोरक्षक के स्थान में गो-भक्षक बन जायँगे। हिंदू किसी दूसरे मतानुयायी के सम्मुख ऐसी प्रेरणा नहीं कर सकते।

यदि हम स्वयं अछूतों से ही पूछें कि वे क्या चाहते हैं, तो वे यही कहेंगे कि उन्हें हिंदू-समाज तथा धर्म के सब अधिकार दे दिए जायँ।

शेष रहा आर्य-समाज का प्रश्न। इसमें संदेह नहीं आर्य-समाज आरंभ से ही अछूतों की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहा है; परंतु इससे सनातन-धर्मियों के मन में यह शंका उत्पन्न होती है कि आर्य-समाजी अछूतों को अपने में मिलाकर अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं, और संभवतः इसीलिये वे इस काम का विरोध करते आए हैं। इसलिये उचित यह है कि हिंदुओं के सभी अंग मिलकर इस काम को हिंदू-मात्र का काम समझकर निर्विघ्न रूप से करें।

प्रश्न—क्या आप यह नहीं मानते कि देश के लिये मुसलमानों से अधिक हानिकारक विदेशी राज्य है?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर समय और अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा। यदि हमें आशा हो कि हम बहुत थोड़े समय में मुसलमानों की सहायता से स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं, तो हमें मुसलमानों द्वारा बहुत-सी हानि उठाने के लिये भी तत्पर हो जाना चाहिए। परतु वास्तव में स्वराज्य प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक समय दरकार है, और इस समय में मुसलमान हिंदुओं को हड़पकर अपनी संख्या बढाने में जी-जान से लगे हुए हों, तो हमारा अपने अस्तित्व की रक्षा करना मुख्य कर्तव्य है।

प्रश्न—परंतु क्या आपके राष्ट्र का अस्तित्व स्वराज्य के बिना बचा रहेगा?

उत्तर—विदेशी राज्य और बात है, और राष्ट्र के अस्तित्व का लोप हो जाना दूसरी बात है। हिंदू-जाति पर कई शताब्दियों तक मुसलमानी शासन रहा; परतु फिर भी इस जाति में जीवन के चिह्न बचे रहे और जातीयता का भाव भी शेष रहा। इसी जातीय भाव से प्रेरित होकर वे मुसलमानी शासन को दूर फेंक स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो सके थे। यदि हिंदू क़ौम उस पराधीनता से मिट गई होती, तो अन्य बड़ी-बड़ी पुराने राष्ट्रों मिसर, ईरान, यूनान आदि की भाँति केवल इनका नाम-मात्र ही शेष रह जाता। स्वराज्य का प्रयोजन राष्ट्रीय भावों और जातीयता की रक्षा के लिये है; परंतु इन दोनों वस्तुओं को नष्ट कर देने से फिर स्वराज्य से कोई लाभ नहीं रहता।

प्रश्न—ईसाई और मुसलमान, दोनों ही संप्रदाय हिंदुओं को हड़प जाने पर तुले हुए हैं। क्या ईसाई मुसलमानों की अपेक्षा अधिक भयानक नहीं, क्योंकि अँगरेज़ी सरकार भी उनकी सहायता कर रही है?

उत्तर—यों तो दोनों ही भय का कारण हैं, क्योंकि दोनों दूसरों को मिटकार स्वयं फैलना चाहते हैं। परंतु हमें मुसलमानो से अधिक भय है, क्योंकि मुसलमान प्रत्येक गाँव, शहर और गली-कूचे में हमारे

पड़ोसी हैं, और हमारी निर्बलताओं से परिचित होने के कारण हमें हानि पहुँचा सकते हैं।

प्रश्न—परंतु यह उतरा-चढ़ी और संग्राम किस उद्देश्य से है?

उत्तर—यह संसार ही उतरा-चढ़ी और संग्राम का क्षेत्र है। मनुष्य की उत्पत्ति के दिन से ही समाज में उतरा-चढ़ी जारी है। वैदिक काल में आर्यों और दस्युओं में संग्राम होता था। पौराणिक काल में यह संग्राम देवों और असुरों में हुआ। महात्मा बुद्ध ने शांति का राज्य स्थापन करने का प्रयत्न किया और इस संग्राम की ओर से दृष्टि फेर ली। जब तक बौद्ध-धर्म का प्रभुत्व रहा, शांति भी रही; परंतु बौद्ध-धर्म की प्रबलता हटने के साथ ही अन्य मत के अनुयायियों ने सिर उठाया और बौद्धों का अस्तित्व यहाँ से मिटा दिया। शांति की रक्षा के लिये शक्ति की आवश्यकता है। हिंदुओं का प्रयत्न इन सब शक्तियों को दमन करने के लिये है, जो भीतर या बाहर से इस जाति को हानि पहुँचा रही हैं। यदि मुसलमान हमें नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें उनके भी विरुद्ध खड़ा होना होगा।

हम इस समय सब ओर से विपत्तियों में घिरे हुए हैं, हमारा भरोसा केवल परमात्मा पर ही है; परंतु परमात्मा केवल उन्हीं की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

प्रश्न—मुसलमानों में धार्मिक पक्षपात अधिक होने का क्या कारण है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि इसलाम प्रारंभ से ही एक सैनिक संप्रदाय रहा है। इसका जन्म युद्ध में हुआ, युद्धों में ही इसका विकास हुआ, और इसका प्रचार भी युद्धों से ही हुआ। इसलाम का संपूर्ण अतीत इतिहास युद्धों का ही इतिहास है, और वह उन्हें हर समय युद्ध के लिये तत्पर रखता है। मज़हब के नाम पर वे सदा एक हो जाते हैं। जो संप्रदाय युद्ध-भूमि में उत्पन्न होता है, आवश्यक है उसके

अनुयायियों में एक प्रकार का भ्रातृभाव और सहानुभूति का भाव हो। यही प्रेम दूसरे संप्रदाय के मनुष्यों के प्रति पक्षपात का रूप धारण कर लेता है। इसके विरुद्ध हिंदुओं का धर्म शांति के समय की उपज है। हिंदुओं में कभी जातीय दृष्टिकोण से एकत्र होकर दूसरे से लड़ने का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। हिंदुओं में सिख-धर्म की उत्पत्ति युद्ध के समय हुई है, और प्रमाण के लिये आप देख सकते हैं कि इस धर्म में धार्मिक पक्षपात की कमी नहीं है।

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये युद्ध करने के लिये तैयार होना ही हिंदुओं की निर्बलता को दूर करने का एक-मात्र उपाय है। यही भाव इन्हें संसार में जीवित रह सकने योग्य बना सकेगा। हिंदुओं को जीवन-संग्राम से न घबराकर इस जीवन के लिये आवश्यक समझ, इसके लिये तैयार हो जाना चाहिए।

प्रश्न—आपकी सम्मति में हिंदू-मुसलिम एकता किस सिद्धांत पर स्थिर हो सकती है?

उत्तर—मेरे विचार में धार्मिक पक्षपात और असहिष्णुता मुसलमानों की प्रकृति का उसी प्रकार एक अंग बन गया है, जिस प्रकार धार्मिक उदारता हिंदुओं की प्रकृति का अंग है। एकता तभी हो सकती है, जब दोनों में से एक अपनी प्रकृति बदल दें। या तो मुसलमान धार्मिक असहिष्णुता छोड़ दें, या हिंदू ही असहिष्णु बन जायँ। नहीं तो पत्थर और काँच का मेल असंभव है।

प्रश्न—मुसलमानों की प्रकृति किस प्रकार बदल सकती है?

उत्तर—इसका यही उपाय हो सकता है कि मुसलमान अपना मत इस्लाम को रखते हुए भी—जिस प्रकार ईरानियों ने इस्लाम को ग्रहण कर भी अपनी भाषा तथा अपने इतिहास को नहीं छोड़ा—अपनी भाषा, इतिहास और सभ्यता को हिंदोस्तानी रक्खें। इस प्रकार हिंदुओं का ही एक भाग बनकर एक हिंदोस्तानी क़ौम बना सकेंगे।

प्रश्न—क्या हिंदुओं की प्रकृति भी किसी तरह बदली जा सकती है?

उत्तर—हाँ! उसका ढंग यह है कि हिंदुओं में अपनी जाति के लिये पक्षपात उत्पन्न हो जाय। पक्षपात से अभिप्राय है गाढ़ सहानुभूति, अर्थात् यदि किसी भी हिंदू भाई को कोई कष्ट हो, तो प्रत्येक हिंदू उसे अपना कष्ट समझे।

प्रश्न—क्या यह पक्षपात बुरी बात नहीं है?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं, इस दृष्टि से पक्षपात बुरी वस्तु नहीं है। प्रत्येक जाति अपने मनुष्यों से प्रेम करता हुई दूसरी जातियों से थोड़ा-बहुत अलग हो ही जाती है। इसके अतिरिक्त मानव-प्रकृति में राग और द्वेष स्वाभाविक हैं। द्वेष का भाव भी बड़ा पवित्र है। हमें स्वभावतः ही इन शक्तियों से द्वेष होना चाहिए, जो हमें नष्ट करनेवाली हैं। इस प्रकार का द्वेष का भाव ही जाति को संकट से बचा सकता है। संक्षेपतः मैं चाहता हूँ कि मुसलमान भाई अपनी प्रकृति को बदल दें, और हमारे भाई बनकर रहें, नहीं तो फिर एकता की केवल एक ही सूरत शेष रह जाती है, और वह यह कि जिस अनुपात में हिंदू बलवान् होंगे, उसी अनुपात में एकता भी दृढ़ होगी। बलवान् और निर्बल में प्रेम नहीं हो सकता।

प्रश्न—फिर भी क्या मुसलमान अँगरेज़ों से अच्छे नहीं, क्योंकि अँगरेज़ हमारे राजनीतिक शत्रु हैं?

उत्तर—मैं तो मुसलमानों को अँगरेज़ों से भी अधिक बुरा समझता हूँ। अँगरेज़ों ने हमारे देश पर अधिकार किया है, उनका राष्ट्रीय हित इसी में है कि वे अपने अधिकार की रक्षा के लिये सब प्रकार से प्रयत्न करें। हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डाल रखना इसका सबसे अच्छा और सुगम उपाय है। ऐसा करने में अँगरेज़ अपने राष्ट्र का हित ही करते हैं। मुसलमानों की अवस्था ठीक इसके विरुद्ध है, वे

इस देश में रहते हुए अपने मज़हब के लिये, जो एक दूसरे देश की उपज है, अपने देश-वासियों के विरुद्ध सब कुछ करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस मज़हब के लिये वे अपने देश तथा राष्ट्र से बिलकुल विमुख हुए बैठे हैं।

प्रश्न—आप मुसलमानों के छोटे-छोटे अपराधों का डंका पीटकर हिंदू-मुसलिम विरोध को बढ़ा रहे हैं, क्या हिंदू भी वैसे अपराध नहीं करते ?

उत्तर—आपका कहना ठीक है। हिंदुओं में भी बुरे आदमी हैं, लेकिन भेद इतना है कि हिंदुओं में जो ऐसे मनुष्य हैं, वे व्यक्तिगत अपराध करते हैं, और हिंदू-समाज उनके इस काम की निंदा कर उनको सीधे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता है। इसके विरुद्ध मुसलमानों में ऐसे कामों को मज़हबी रंग देकर सब मुसलमान अपराधी की सहायता के लिये तत्पर हो जाते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अब हिंदू भी सोचने लगे हैं कि क्या उन्हें भी ऐसे अपराधों को जातीयता का रंग देकर प्रतिकार के लिये तत्पर हो जाना चाहिए।

प्रश्न—हिंदुओं में सामाजिक विभिन्नता बहुत अधिक है, क्या वे कभी एक संगठन में बाँधे जा सकेंगे ?

उत्तर—मैं तो स्वयं कहता हूँ कि हिंदू-संगठन के आंदोलन को सफल बनाने के लिये इसे ऐसे मनुष्यों के हाथों से बचाना होगा, जो सामाजिक संकीर्णता में फसे हुए हैं। हिंदू-सभा को तो ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जिन्हें केवल यही धुन और लगन हो कि हिंदू एक सुसंबद्ध माला में, किस प्रकार पिरोए जा सकते हैं। इस कार्य में समय भी लगेगा। जिस समय तक पार्टीबाज़ी और सांप्रदायिक संकीर्णता रहेगी, यह संगठन नहीं हो सकेगा।

भाई परमानंद

हिंदू-जीवन का रहस्य
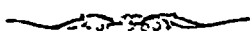
समय की गति

बचपन में मैंने एक कहानी सुनी थी। कहते हैं, एक राजा था। उसे एक ज्योतिषी ने बताया कि अमुक दिन, विशेष मुहूर्त में, एक ऐसी विलक्षण वायु प्रवाहित होगी, जिसके स्पर्श से प्रत्येक मनुष्य पागल हो जायगा। यह समाचार सुन राजा बहुत चिंतित हुआ। उसने अपने मंत्री को बुला इस विषय में उसका परामर्श लिया। विचार के पश्चात् राजा ने एक ऐसा घर बनाने की आज्ञा दी, जिसके भीतर बैठ जाने से उस विचित्र वायु के स्पर्श से मनुष्य सब प्रकार सुरक्षित रह सके। वह विशेष मुहूर्त आया। राजा और मंत्री, दोनों उस मकान में वायु के प्रभाव से सुरक्षित हो बैठ गए। वायु आई, और उसके प्रभाव से सारे नगर के मनुष्य पागलों की-सी बातें करने लगे। राजा और मंत्री अपने सुरक्षित स्थान से निकले जिसे वे देखते, वही अद्भुत, पागलों की-सी, बातें करता उन्हें जान पड़ता। उनका रंग-ढंग शेष सब प्रजा से विचित्र होने के कारण प्रत्येक मनुष्य उनकी ओर संकेत कर कहता, यह देखो—ये कैसे नए ढंग के अद्भुत मनुष्य हैं। सारी प्रजा की दृष्टि में दोनों ही पागल जँचने लगे।

इस कहानी की ऐतिहासिकता के विषय में हमें झगड़ा नहीं करना; परंतु इतना निस्संदेह सत्य है कि संसार में प्रत्येक समय में, विशेष

प्रकार की वायु का प्रवाह होता है, और उसका प्रभाव जनता पर पड़ता है। जो मनुष्य इस वायु के प्रभाव से बच जाते हैं, वे लोगों की दृष्टि में पाग़ल जँचने लगते हैं। इस प्रकार के पाग़लपन का ज्वलंत प्रमाण गुरु तेग़बहादुर थे। यह किसी से छिपा नहीं कि गुरु तेग़बहादुर का बलिदान जाति और देश के लिये कितना महत्त्व-पूर्ण प्रमाणित हुआ है। परंतु यह थोड़े ही लोग जानते होंगे कि जीवन के पहले भाग में उन्हें लोग 'तेगा झल्ला' (तेगा पाग़ल) कहकर पुकारते थे। उस दुनिया को क्या कहा जाय, जो गुरु तेग़-बहादुर को 'तेगा झल्ला' कहती थी। किया क्या जाय, इस दुनिया के रंग ऐसे ही हैं।

गुरु तेग़बहादुर गुरु हरगोविंदजी के छोटे पुत्र थे। इनके बड़े भाई गुरदित्ता अपने पिता की आँखों के सामने ही इस संसार से चल बसे। गुरु हरगोविंदजी की मृत्यु के उपरांत उनके पोते गुरु हरराय गद्दी पर बैठे। गुरु हररायजी ने अपने बड़े पुत्र रामराय को गद्दी के अधिकार से च्युत कर दिया। गुरु हररायजी की मृत्यु के समय उनका छोटा पुत्र श्रीहरिकृष्ण अभी बिलकुल बालक था। देहली में गुरु-जी का देहांत होने पर बहुत-से लोग गद्दी पर अपना अधिकार जताने लगे, और अनेक स्थानों पर अनेक गुरु बन गए। सर्वसाधारण सिखों ने गुरु का पद गुरु तेग़बहादुरजी को सौंप दिया। गद्दी के दूसरे अधिकारी और गुरु गुरु तेग़बहादुर को 'तेगा झल्ला' कहकर परिहास करते थे। भाग्य की बातें कहिए या ईश्वर की करनी। एक व्यापारी ने कष्ट के समय गुरु की सेवा में एक सौ मुद्रा भेंट करने का प्रण किया था। विपत्ति से उद्धार पाने पर वह धन लेकर अमृतसर के निकट एक ग्राम में, जहाँ सब गद्दीधारी गुरु बैठा करते थे, आया। सब गुरुओं के सम्मुख वह पाँच-पाँच मुद्रा रखता गया, और वे लेकर प्रसन्न होते गए। जिस समय उसने श्रीगुरु तेग़बहादुरजी के चरणों

में भी पाँच मुद्रा अर्पण कीं, तो उन्होंने आश्चर्य से कहा—हैं, पाँच ही! व्यापारी ने समझा, यही वास्तव में गुरु हैं; इन्होंने जान लिया है कि मैंने क्या प्रण किया था। उसने तुरंत सब धन उनको अर्पण कर दिया। इस बात के सर्वसाधारण में प्रसिद्ध होने पर अकेले गुरु तेग़बहादुर ही सत्गुरु समझे जाने लगे।

इसी लाहौर का उदाहरण ले लीजिए। एक समय यहाँ मुसलमानों का ही डंका बजता था। हिंदू भी अपनी संतान को अरबी और फ़ारसी की शिक्षा लेने के लिये मसजिदों में भेजते और इसी में उनका लाभ समझते थे। मनुष्यों की वेश-भूषा भी समयानुसार बदल गई थी। न्यायालयों में 'शरह' का दौरदौरा था। हिंदू प्रजा भी 'शरह' के नियमों से परिचित होना आवश्यक समझती थी। उस समय किसी के हृदय में इस बात का आभास-मात्र न हो सकता था कि एक दिन इस लाहौर में उन्हीं सिखों का राज्य होगा, जिनके सिर शहीदगंज में प्रति दिन सैकड़ों की संख्या में काटे जाते थे। महाराजा रणजीतसिंह का समय आया। बड़ी-बड़ी दाढ़ियों का चलन हो गया; सुंदर दाढ़ीवाले को पुरस्कार मिलने लगा। किसका साहस था कि सिख सवारों की आज्ञा की अवहेलना करे। जिस ओर सिख निकल जाते, लोग भयाकुल हो काँपने लगते। एक समय इसलाम का प्रभुत्व था, फिर सिखों का हुआ; उसी तरह अब अँगरेज़ों और उसकी सभ्यता का समय है। अपनी जेबों से निकालकर लाखों रुपए हम अँगरेज़ी सभ्यता फैलाने के लिये कॉलेज़ों और स्कूलों पर व्यय कर रहे हैं। हम अपनी संतान को अँगरेज़ी पोशाक पहने देख प्रसन्न होते हैं। हमारे नवयुवक सड़कों और बाग़ों में टहलते हुए अँगरेज़ी बोलने में गौरव का अनुभव करते हैं। इसके विरुद्ध एक भी शब्द कहने का कोई साहस नहीं कर सकता। आजकल यह नक़ल की हवा चल रही है। हम यह भी नहीं सोच सकते कि कहीं इस नक़ल की

हवा ने हमें पाग़ल तो नहीं बना दिया ! इसके विपरीत आज वही व्यक्ति पाग़ल समझा जायगा, जो इस हवा को पाग़लपन कहेगा, संसार उसे पाग़ल बना देगा। मैं नहीं कह सकता, मेरा विचार ठीक है या ग़लत, परंतु मुझे अनुभव होता है कि समय की वायु हमें उलटा उडाए लिए जा रही है। मैं कभी सोचता हूँ, मैं निरर्थक प्रयत्न कर रहा हूँ, समय की यह गति साधारण नहीं है, यह एक प्रबल आँधी है, इसमें मेरी धीमी-सी पुकार को कौन सुनेगा ! कभी विचार आता है, चुप होकर बैठ जाऊँ, मुझे इससे क्या प्रयोजन। समुद्र का तूफ़ान एक मुट्ठी रेत डालने से नहीं रुक सकता। परंतु विवश हूँ, रहा नहीं जाता। हृदय का आवेग नहीं सँभलता। आओ, थोडा इस विषय पर विचार करें कि समय का प्रवाह किस प्रकार चलना आरंभ होता है ? जिस प्रकार प्रकृति में आँधी या तूफ़ान आने के कई कारण होते हैं, वैसे ही मानव-समाज में समय की आँधी भी विशेष कारणों से ही आती और परिवर्तन उपस्थित करती है। जिस प्रकार प्रकृति मे एक स्थान की वायु गरम हो जाने से ऊपर उठ जाती है, और उसके स्थान पर नई वायु आ जाती है, उसी तरह जब किसी जाति में अपनी रक्षा और शासन की शक्ति का अभाव हो जाता है, तो दूसरी जातियाँ आकर उसे अपने अधीन कर लेती हैं। प्रबल जातियाँ अपने साथ अपनी सभ्यता की वायु भी लाती हैं। इसलाम अपने साथ इसलामी वायु लाया था, और अँगरेज़ अपने साथ अँगरेज़ी सभ्यता की वायु लाए हैं।

इस प्रकार की आँधी आने का एक और भी ढंग है। किसी महा-पुरुष के मस्तिष्क में एक विचार उत्पन्न होता है। यह विचार शनैः-शनैः फैलना आरंभ करता है, और थोड़े ही समय में 'व्याधि के कीटाणुओं की भाँति जहाँ-तहाँ सब स्थानों में पहुँच जाता है। इस प्रकार विचार के फैल जाने पर उसकी पुराने विचारों से टक्कर लगती

है। यह टक्कर एक प्रकार के संग्राम का रूप धारण कर लेती है। इस टक्कर या संग्राम में पराजित हो जाने से नवीन विचार का लोप हो जाता है। परंतु विजय प्राप्त करने से वह अपने लिये स्थान बना-कर समाज में एक लहर उत्पन्न कर देता है, जिसके अनुसार समाज नए साँचे में ढल जाता है।

स्वामी दयानंद ने पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण की भयंकरता को समझ लिया था। पश्चिमी सभ्यता ने केवल हमारी सभ्यता पर ही नहीं आक्रमण किया, बल्कि इसकी जड़ों को भी खोखला करना आरंभ कर दिया था। स्वामीजी के मस्तिष्क में विचार उत्पन्न हुआ कि वह अपनी सभ्यता की रक्षा का उपाय करें। स्वामीजी ने इस उद्देश को सम्मुख रख आर्य-समाज की स्थापना की। स्वामीजी के विचारों ने फैलना आरंभ किया। पुराने विचारों से टक्कर भी लगी और संग्राम भी आरंभ हो गया। यह कहना तो कठिन है कि इसका परिणाम क्या होगा, परंतु मेरे विचार में समाज ने ठीक मार्ग का अवलंबन नहीं किया। धर्म 'यज्ञ' से पुष्ट होता है, और 'यज्ञ' का अर्थ है त्याग तथा उत्सर्ग। समाज को आरंभ में त्याग का मार्ग कठिन जँचा। उसने ईसाइयों का अनुकरण कर स्कूल-कॉलेज तथा अन्य संस्थाओं की स्थापना द्वारा अपने धर्म का प्रचार करने का यत्न किया। इन संस्थाओं को चलाने के लिये धन की आवश्यकता अनु-भूत हुई। जनता से माँग-माँगकर फंड एकत्र किए गए। धन-संचय के लिये जलसों की आवश्यकता अनुभूत हुई। प्रत्येक समाज ने कोई स्कूल अथवा दूसरी अन्य संस्था स्थापित कर ली और धन-संचय के लिये उत्सव आरंभ कर दिए। इन उत्सवों को ही धर्म-प्रचार का मुख्य साधन समझ लिया गया। इन संस्थाओं के तो मैं इसलिये विरुद्ध हूँ कि ये हमें लाभ पहुँचाने के स्थान में हमारा नाश कर रही हैं। यदि इन संस्थाओं को ही लाभदायक समझा जाय, तो बंगाल ने

पंजाब और संयुक्त-प्रांत से कहीं अधिक उन्नति की है। बंगालियों ने केवल सरकार के ही ख़र्च पर, जाति का एक पैसा भी ख़र्च किए बिना, इतना अधिक शिक्षा का प्रचार किया है कि उनके बराबर होने में अभी हमें बहुत समय लगेगा। फंडों के मैं इसलिये विरुद्ध हूँ कि मुझे ये मठों और दलबंदी की नींव प्रतीत होते हैं। चंदा माँगना मुझे इसलिये उचित नहीं जँचता कि इसके कारण लोगों के हृदय से दान देने की श्रद्धा उठ गई है। उचित तो यह था कि इन लोगों में तप और त्याग का बल होता, और लोग इनके चरणों पर धन का ढेर लगा देते; परंतु ये लोग झोली डाल निर्लज्ज बन माँगने के लिये निकल पड़े। इससे न लोगों के हृदय में दान की पवित्रता का विचार रहा, और न इन लोगों के लिये श्रद्धा। जलसे मुझे इसलिये निरर्थक जान पड़ते हैं, कि इनमें केवल दिखावा ही शेष रह गया है। हम इस दिखावे को ही काम समझकर इसमें अपनी शक्ति और समय नष्ट कर देते हैं, और दो दिन के पश्चात् थक-कर बैठ जाते हैं। फिर साल-भर आनेवाले जलसे की प्रतीक्षा करते रहते हैं। पुराने विचार के लोगों को रीति-रिवाज़ तथा विवाहों के बोझ ने मार दिया है, और नए विचार के लोगों को जलसों और कानफ़्रेंसों ने नष्ट कर दिया है। बात जहाँ की तहाँ है; बना कुछ नहीं।

आर्य-समाज ने मथुरा में स्वामी दयानंदजी की जन्म-शताब्दी मनाई है। क्या यह भी हमारे देश में होनेवाले बहुत-से जलसों की भाँति एक तमाशा ही रहेगा! यदि नहीं, तो मैं आर्य-समाज के नेताओं के सम्मुख प्रार्थना करूँगा, वे एक बार सोचें कि कहीं उन्होंने उलटा मार्ग तो नहीं पकड़ा है। यदि हमने उत्तर को छोड़ दक्षिण का मार्ग पकड़ा है, तो हम जितना ही चलेंगे, उतना ही उत्तरीय ध्रुव से दूर होते जायँगे। बौद्ध लोग भी महात्मा बुद्ध की

शताब्दियाँ मनाते थे, परंतु उसमें वे भिक्षुक सम्मिलित होते थे, जो संसार को लात मार धर्म-प्रचार को ही अपने जीवन का मार्ग बना लेते थे। वे रेल के द्वारा सैर करनेवाले तमाशबीन नहीं थे। वे शताब्दी मनाते हुए अपने जीवन का आदर्श निश्चित करते थे। यदि हमने शताब्दी मनाकर अपने समाज और अपने जीवन में कोई परिवर्तन न किया, तो आप सोचिए, हमें क्या लाभ पहुँचेगा?

मुझे तो सचमुच जाति की नाव भँवर में पड़ी दीखती है। हमारे मकान को आग ने घेर लिया है, और हम अपने परिवार तथा संतान के लिये मनोरंजन की सामग्री की चिंता में मग्न हैं। आप उस मनुष्य को क्या कहेंगे, जिसकी नौका डूबने के लिये तैयार है, और वह भोजन तैयार करने में व्यस्त है? वह भोजन पकाकर क्या करेगा? क्या वह उस भोजन को खा सकेगा? मेरे विचार में तो इस समय वायु का प्रवाह बदलने की आवश्यकता है। मैं देखता हूँ, इस काम के योग्य शक्ति मुझमें नहीं है। यों तो आत्माओं में अनंत बल होता है, परंतु साहस नहीं होता। क्या कुछ ऐसे महापुरुष हैं, जो इस कठिन समय में मेरी सहायता करेंगे?

बगला-भगत संसार

संसार में भले-बुरे मनुष्य सभी जगह रहते हैं। यदि संसार में बुरे मनुष्य न रहते, तो भलों के गुण का आदर कैसे होता? परंतु हमारे देश में तो बुराई भी अंतिम सीमा तक पहुँच गई है। यहाँ तक कि लोग धर्म को त्याग ध्यान, योग इत्यादि को भी ठगी का साधन बना रहे हैं।

एक समय था, हमारे देश में 'साधु' शब्द आदर-सूचक था; परंतु उस आदर का परिणाम यह हुआ कि लाखों निकम्मे आदमियों ने साधुओं का वेश धारण कर लिया, और इस समय सच्चे साधु दुष्प्राप्य हो गए हैं। इस देश में एक समय आया था, जब गुरु का सम्मान पिता और ईश्वर से भी अधिक होने लगा था। धूर्त मनुष्यों ने गुरु बनने में ही अपना मतलब पूरा होता देखा। ऐसे गुरु तो असंख्य हैं, परंतु सत्गुरु मिलना असंभव है।

"बगला-भगत" ये दो संक्षिप्त-से शब्द हैं; परंतु ये दोनों शब्द एक प्रकार की मनुष्य-प्रकृति को ऐसी अच्छी तरह समझा देते हैं कि कोई व्याख्यान और निबंध भी नहीं समझा सकता। प्रायः सभी ने नाले या तालाब के किनारे लंबी गर्दनवाले एक जीव को नेत्र मूँदे, ध्यानावस्थित भाव से खड़े देखा होगा। कभी-कभी तो यह तपस्वी केवल एक पैर पर घंटों खड़ा रहता है। इसके नेत्र मुँदे रहते हैं, परंतु इतने ख़ूनी रहते हैं कि निकट आई मछली बचकर निकल न जाय। भोली-भाली मछली तपस्वी की तपस्या के रहस्य को नहीं समझती, वह निर्भय हो उसके समीप आ जाती है। भक्तजी तुरंत अपनी लंबी चोंच से उसे आशीर्वाद दे स्वर्ग का यात्री बना देते हैं।

यह जीव संसार की नीति को बिलकुल स्पष्ट कर देता है। अपने-अपने काम में लगे हुए सभी लोग इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब कोई उनके निकट आकर उनके जाल में फँसे। दूकानदार तकिया लगाए दूकान में बैठा है। उसका ध्यान बाज़ार में गुज़रनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की ओर है। वह सोचता है, क्या उसकी दूकान किसी व्यक्ति को अपनी ओर खींच सकेगी? सैर करनेवाला अपने मतलब से इधर-उधर ताकता फिरता है। इन दोनों की अवस्था ठीक इस प्रकार है, जैसे एक नवयुवक सुंदर कपड़े पहन, तेल-फुलेल लगाकर वेश्याओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बाज़ार में फिरता है। दूसरी ओर वेश्या सिंगार कर, कपड़े पहन, मुख को पाउडर से रँग, चमक-दमक कर प्रकाश के सम्मुख बैठ नवयुवकों का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करती है। दोनों ही शिकार की आहट ले रहे हैं। जब कोई साथी मिल जाते हैं, तो दोनों यही समझते हैं, उन्होंने शिकार फँसा लिया। इस संसार का व्यवहार ठीक वेश्या के पेशे की भाँति है। कचहरियों में भी यही अवस्था है। सब लोग अपना-अपना जाल बिछाए शिकार की प्रतीक्षा में बैठे हैं। वकीलों के दफ्तरों में भी यही कुछ देख पड़ता है। वैद्य और डॉक्टर भी लंबे चौड़े विज्ञापन देकर मूर्खों को बहकाने की चेष्टा करते हैं। धर्मस्थान में जाओ, तो वहाँ भी बगलों की मूर्तियाँ ही दृष्टिगोचर होंगी। स्त्रियाँ और पुरुष अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये देवतों को ठगने के प्रयत्न में हैं। देवतों के पुजारी उन्हें ठगने के लिये जाल बिछाए हुए हैं। हम समझते हैं, रेल हमारे आराम के लिये बनाई गई है; परंतु रेलवाले जानते हैं कि ये मूर्ख लोग रात-दिन सफ़र कर हमारे लिये पैसे इकट्ठे करते रहते हैं। घी का व्यापारी नक़ली घी सस्ता बेचकर ग्राहकों को ठगता है, और हलवाई तेल और विदेशी खांड बरतकर ग्राहकों से पैसे ऐंठने की चिंता में रहता है।

मुझे तो संसार में कोई काम बिना ठगी के नहीं दीखता। आप कहेंगे, स्कूलों और कॉलेजों के अध्यापक ठग नहीं; परंतु मुझे तो वहाँ भी वही तमाशा देख पड़ता है। कोई समय रहा होगा, जब शिक्षा देना धर्म-कार्य समझा जाता होगा। इस समय तो अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों का पेशा भी कमाई की दौड़ में किसी से कम नहीं है। युनिवर्सिटी विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों को लूटने के लिये एक बहुत अच्छी फ़र्म का काम कर रही है। मासिक शिक्षा-शुल्क के अतिरिक्त परीक्षा-शुल्क से लाखों रुपए की आय है। अध्यापकों में इस आय को परस्पर बाँटने के लिये खींचातानी हो रही है। जो पुस्तकें नियुक्त करने के काम पर रहते हैं, वे उसी से रुपया ऐंठने की चेष्टा करते हैं। थोड़े-थोड़े परिवर्तन से प्रति वर्ष नई पुस्तकें स्कूलों में नियुक्त की जाती हैं, ताकि हर साल नई पुस्तकें ख़रीदी जायँ, और उससे अध्यापकों की जेब में रुपया पहुँचे।

पुराने समय में एक-एक पुस्तक वर्षों चलती थी। पिता और पुत्र एक ही पुस्तक से पढ़ लेते थे। अब पुस्तकें लिखनेवाले भी बहुत हो गए हैं। अध्यापकों का व्यय भी बढ़ गया है। उन्हे मोटरों की भी आवश्यकता रहती है। पुस्तकें बेचनेवाले भी बढ़ गए हैं, इनका भी ख़र्च बहुत है। फिर विद्यार्थियों को लूटने के ढंग किस तरह न निकाले जायँ। कई अध्यापको को इस लूट में भाग नहीं मिलता। वे और उपाय ढूँढ़ते हैं। वे किसी अमीर के लड़के को ताड़कर उसे तंग करना आरंभ कर देते हैं। उसके पिता के पास शिकायत जाती है कि विद्यार्थी अमुक विषय में निर्बल है, और इसके लिये घर पर एक अध्यापक (tutor) की आवश्यकता है। वही अध्यापक उसे घर पर पढ़ाने के लिये भी नियुक्त हो जाता है, ताकि विद्यार्थी की कमी पूरी हो जाय। विद्यार्थी की कमी तो क्या पूरी होगी, हाँ, अध्यापक की आय की कमी पूरी हो जाती है। स्कूलों को छोड़िए, सभाओं और समाजों की अवस्था

पर ध्यान दीजिए। मुझे तो साधारण लोग कुछ धूर्त और चतुर व्यक्तियों के हाथों में कठपुतली बने दीखते हैं। इन लोगों को सम्मान का लोभ है, इनके दूसरे सहायकों को धन की आवश्यकता है। इनकी इच्छा तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक हिंदू-जाति टुकड़े-टुकड़े हो कर परस्पर लड़ने-मरने के लिये तत्पर न हो जाय। इन लोगों ने हिंदुओं की नाड़ी को पहचान लिया है, अर्थात् हिंदू ज़िद में आकर अपने भाइयों के विरुद्ध रुपया ख़र्च करने के लिये तैयार हो जाते हैं। इनमें इस ज़िद और ईर्ष्या के भाव को बनाए रखने से ही उन जाति-द्रोहियों के लिये, जो अपने को नेता कहकर ठगना चाहते हैं, आराम के सभी साधन प्रस्तुत रह सकते हैं। इन लोगों की नीति मेरी समझ में नहीं आती। ये लोग अपने को हिंदू-संगठन का पोषक और समर्थक कहते हैं, और जो सभा संगठन के कार्य को करती है, उसके ये विरुद्ध काम करते हैं। मैं देख रहा हूँ, हिंदू प्रतिदिन मृत्यु की ओर सरक रहे हैं। इनके निरुत्साही हृदयों में जातीयता और संगठन के नाम पर कोई उत्साह उत्पन्न नहीं होता। इन्हें लगाने का यही तरीक़ा है कि इन्हें अपने ही किसी संप्रदाय या शाखा के विरुद्ध भड़काया जाय। बस, फिर मौज है। जो चाहो, इनसे करा लो। जो चाहो, इनसे ले लो। हिंदुओं को अपने भाइयों के विरुद्ध बहुत क्रोध आता है। इनकी सबसे बड़ी व्याधि यही है कि ये अपने किसी भाई की बात नहीं सह सकते; परंतु शत्रु के जूतों को चूमकर सह जाते हैं। हिंदू-जाति इस समय भयंकर संकट में गुजर रही है। इस समय जो मनुष्य हिंदू-संगठन के मार्ग में शरारत करके रोड़े अटकाता है, वह जातीय द्रोह का अपराधी है।

कुछ लोग शंका कर सकते हैं कि मैं भी हिंदू-सभा बनाना चाहता हूँ, और उपर्युक्त लांछन मुझ पर भी लग सकते हैं। मुझे इस विषय में केवल इतना ही कहना है कि आख़िर संसार में कोई सिद्धांत भी

होना चाहिए, जो जाति और राष्ट्र के जीवन और मृत्यु की समस्या को सुलझा सके। क्या जाति में संगठन और एकता के लिये प्रयत्न करना वैसा ही है, जैसा जाति के टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयत्न करना? मैंने तो संसार के इतिहास से यही सीखा है कि जब किसी जाति के लिये भीतर या बाहर से जीवन-नाश की आशंका हो, तो उसे सब पारस्परिक भेद-भाव को ताक़ में रख संगठित हो जाना चाहिए। उसके लिये संगठन और आत्मरक्षा का धर्म ही सब धर्मों से ऊँचा है। यदि मैं जाति में भेद-भाव और अनेकता फैलाता हूँ, तो अपराधी और पापी हूँ। यह सभी स्वीकार करते हैं कि हमारी अवस्था को सुधारने का एक-मात्र उपाय जातीय संगठन और एकता ही है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, आप संसार को इसके वास्तविक रंग में देखें!

मैं कह कुछ और रहा था, कह गया कुछ और। मैंने विषय कुछ और आरंभ किया था, परंतु आ गया हिंदू-संगठन पर। मैं विवश हूँ, कुछ नहीं कर सकता। जो विचार मन में स्थान किए हुए हैं, वे अव-सर न देखकर भी बाहर निकल आते हैं।

मेरा नया मज़हब

मैं सारी आयु आर्य-समाजी रहा हूँ। अब भी मेरे हृदय में आर्य-समाज के लिये वही प्रेम तथा ऋषि दयानंद के लिये वही श्रद्धा है, परंतु काम मैं हिंदू-संगठन का कर रहा हूँ। एक दिन एक आर्य-समाजी महाशय आए। उन्होंने मुझसे पूछा—"क्यों जी, आपने आर्य-समाज छोड़ दिया है, और अब सब समय हिंदू-संगठन के काम में ही लगे रहते हैं?" मैंने उत्तर दिया—"हाँ, आपका कहना ठीक है। मैं आर्य-समाज के बाहरी रूप के लिये प्रयत्न नहीं करता; परंतु मैंने ऋषि दयानंद और आर्य-समाज के भाव को ख़ूब समझा है, और उसी के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ।" महाशयजी ने पूछा—"इसका क्या अर्थ है?"

मैं चाहता हूँ, इस विषय को कुछ स्पष्ट करके कहूँ। प्रत्येक आंदोलन के दो अंग होते हैं। एक उसकी बाह्य आकृति और रूप, और दूसरा उसकी आत्मा तथा उसका भाव। गुरु गोविंदसिंह ने खालसा बनाया। खालसे का भाव या आत्मा एक वस्तु है, और उसका रूप या चिह्न दूसरी वस्तु। खालसे का संगठन करने के पूर्व गुरुजी ने पाँच प्यारे बनाए, जिनमें चार अछूत जातियों के थे। गुरु ने इनसे कहा, तुम्हें क्षत्रिय बना दिया गया है, और तुम्हारा कर्तव्य है कि धर्म की रक्षा करो। पुरानी प्रथा के अनुसार उन्हें यज्ञोपवीत देने का प्रश्न उपस्थित हुआ। गुरुजी ने सोचा, इन्हें यज्ञोपवीत देने से ब्राह्मणों और क्षत्रियों में असंतोष उत्पन्न होने की संभावना है। उन्होंने उनसे कहा, तुम्हारा यज्ञोपवीत तुम्हारी कृपाण का चमड़ा है। खालसा का उद्देश्य धर्म की रक्षा था। समय आने पर बाह्य चिह्नों का सम्मान बढ़ गया, और भाव उड़ने लगा।

संसार में हिंदू-जाति सबसे प्राचीन है। प्राचीन काल से ही इस जाति को एक रोग लग गया है। इसे उठाने और सुधारने के लिये कई आंदोलन किए गए। सभी आंदोलनों ने थोड़ा-बहुत काम किया; परंतु कालांतर में उनके अनुयायी उनके बाह्य चिह्नों में ही फँस गए, और अपने वास्तविक उद्देश को भुला बैठे। परिणाम यह हुआ कि वे आंदोलन जाति की उन्नति करने के स्थान में जाति के लिये एक बोझ बन गए। इसी प्रकार शनै-शनैः इस जाति में अनेकों संप्रदाय और मठ बनाए गए हैं। इन मठों और संप्रदायों की शिक्षा जाति के टुकड़े-टुकड़े कर इसे विनाश की ओर ले जा रही है। प्रत्येक संप्रदाय इसे अपनी-अपनी ओर खींच रहा है, और जाति दिन-दिन निर्बल होकर अवनत हो रही है।

मैं मानता हूँ कि ऋषि दयानंद के आंदोलन का अभिप्राय जाति को संगठित कर एक ही धर्म में दीक्षित करना था, इसी उद्देश की पूर्ति के लिये स्वामीजी ने समाजों की स्थापना की, पुस्तकें लिखीं, शास्त्रार्थ और खंडन-मंडन किए। उनका उद्देश जाति की रक्षा करना था, ये सब काम उसके साधन थे। उद्देश स्थिर होता है, परंतु साधन समयानुकूल होते और बदले जा सकते हैं। आर्य-समाज का उद्देश वैदिक ज्ञान की रक्षा, वेदानुमोदित एक ब्रह्म की पूजा और वर्णाश्रम धर्म की स्थापना है। मेरा विश्वास है कि हिंदू-जाति का मस्तिष्क और शरीर इसी में आ जाता है, और इनकी रक्षा करना ही हिंदू-जाति की रक्षा करना है।

क्या आर्य-समाज ऐसा कर रहा है? इसमें संदेह नहीं कि जहाँ तक आर्य-समाज के सदस्यों की समझ में आता है, और उनमें शक्ति है, वे इस उद्देश की पूर्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं। परंतु मेरे विचार में आर्य-समाज का मार्ग ठीक नहीं। मैं पूछता हूँ, समाज ने वर्णाश्रम-धर्म की स्थापना के लिये क्या किया है? गुरुकुल तो

हुआ, परन्तु जो लोग वकालत या सरकारी नौकरी करते हैं, वे किस वर्ण में गिने जायँगे? यदि वे शूद्र समझे जायँ, तो वे वेद की रक्षा के अधिकारी किस मुँह से बन सकते हैं? माना, आर्य-समाज मूर्ति-पूजा का खडन करता और इसे ब्रह्म की पूजा में बड़ी रुकावट समझता है। निस्सन्देह मूर्ति-पूजा निंदनीय है यदि वह ब्रह्म की पूजा में बाधक हो। परंतु 'व्यक्ति-पूजा' एक ऐसी प्रबल वस्तु है, जिससे मनुष्य बच नहीं सकता। व्यक्ति-पूजा, जिसे 'वीर-पूजा' कहना चाहिए, जातीय जीवन का मुख्य सहारा है। मेरी सम्मति में आजकल की धन-पूजा ब्रह्म पूजा में मूर्ति-पूजा से कहीं अधिक बाधक है। क्या इस समय आर्य-समाज की संपूर्ण शक्तियाँ धन-पूजा की ओर नहीं लगी हुई हैं? और, यह धन-पूजा भी ठीक ढंग से नहीं हो रही है, जिसके परिणाम-स्वरूप हिंदू-जाति की जड़ों पर कुल्हाड़ी चल रही है। इस धन-पूजा या संसार-पूजा के उद्देश से सरकारी शिक्षा का प्रचार करना वैदिक सिद्धांतों के प्रचार में सबसे बडी रुकावट है। मेरे विचार में इस समय समाज स्वयं एक नया संप्रदाय बनकर अपने उद्देश को भुला रहा है। मैं चाहता हूँ, मेरा विचार ठीक न हो। इस समय हिंदू-संगठन ही जाति की रक्षा और उन्नति का एक-मात्र उपाय है, इसलिये मुझे संगठन में ही आर्य-समाज का उद्देश देख पडता है, और यही हमारे जीवन और मृत्यु का निर्द्धारक प्रश्न है। मुझे संगठन में एक नया धर्म या मज़हब दीखता है। इस मज़हब का एक ही उसूल या सिद्धांत है। वह यही कि इस समय जाति में संगठन उत्पन्न करने के लिये सब भेदों और विरोधों को भुला दिया जाय। हिंदू-धर्म की यह बड़ी विशेषता है कि इसमें सब विचारों और विश्वासों के मनुष्य सम्मिलित हो सकते हैं। हिंदू-धर्म की सबसे बडी विशेषता विचार-स्वतंत्रता है। प्रत्येक हिंदू का कर्तव्य है कि मनुष्य-समाज की इस पवित्र संपत्ति की रक्षा

के लिये युद्ध करने को प्राण-पण से तैयार हो जाय। यही भाव हमें संगठित कर सकता है। क्या यह धर्म मुझे मुक्ति दिला सकेगा?

बहुत-से मनुष्य दूसरे-दूसरे संप्रदायों और मठों में मुक्ति के इच्छुक बनकर फिरते हैं। हिंदुओं के इस रोग के कारण, जो हमारी निर्बलता का भी मुख्य कारण है, बहुत-से मठ उत्पन्न हो गए हैं, जिनके महंत मकड़ी की भाँति जाला ताने शिकार की घात में बैठे रहते हैं। एक कहते हैं—"आओ, कान बंद करना सीख लो। हम तुम्हें समाधि पर पहुँचा देंगे; आओ, यह शब्द सुनो।" दूसरे कहते हैं—"आओ, हमारे गुरु के चित्र के सम्मुख आरती उतारो, तुम्हारा जीवन इतना ऊँचा हो जायगा कि सीधे मुक्ति के द्वार पर पहुँच जाओगे।" इन महाधीश ठगों ने हमारी जाति को क्षय-रोग की भाँति भीतर से खोखला कर दिया है। इन्होंने अज्ञानियों और मूर्खों को मुक्ति का प्रलोभन देकर उन्हें मानसिक दासता के पाश में फँसा रक्खा है। जहाँ हिंदुओं को अन्य भीतरी, बाहरी व्याधियों से छुटकारा पाना होगा, वहाँ उन्हें इस गुलामी के जाल को भी तोड़ फेंकने की चेष्टा करनी होगी। मैं इन भोले-भाले मुक्ति के अभिलाषियों को बता देना चाहता हूँ कि मुक्ति का मुख्य और सीधा मार्ग जाति का हित-चिंतन ही है। जो व्यक्ति जाति-हित के लिये अपने को बलिदान कर सकता है, वह सीधा मुक्ति की ओर जा रहा है। इस मार्ग में कोई धोका फरेब या ठगी नहीं है। संगठन एक सच्चा धर्म है, जो जाति की स्वतंत्रता के उद्देश पूरा कर देगा और प्रत्येक हिंदू के लिये मुक्ति का मार्ग खोल देगा। आओ हिंदू नवयुवको, वृद्धो, और बालको, स्त्रियो और पुरुषो, इस नवीन धर्म में दीक्षित हो जाओ। यह धर्म गंगा की धारा के समान पवित्र है, इसमें स्नान कर अपने को शुद्ध करो।

मेरा नया गुरु-मंत्र

हिंदुओं की गुरु-मंत्र पर अगाध श्रद्धा होती है। उनका विश्वास है कि एक विशेष मंत्र का जप उन्हें सब संकटों और भयों से सुरक्षित कर सकता है, और उनके लिये मुक्ति का मार्ग साफ़ कर देता है। गुरु वह सत्पथदर्शक है, जो उस मंत्र को उनके कान में फूँक देता है। मैं हिंदुओं को एक मंत्र बतलाना चाहता हूँ, जो उन्हें सब दुःखों से मुक्त कर देगा, उनके लिये मुक्ति के सुख को सुगम और सुलभ बना देगा। मैं यह भी प्रार्थना कर देना चाहता हूँ कि शेष सब मंत्र इस समय निष्फल और निरर्थक हैं, चाहे किसी समय वे कितने ही सुंदर और उत्तम रहे हों। प्रत्येक विश्वास के हिंदू-स्त्री और पुरुष का कर्तव्य है कि इस मंत्र को ग्रहण करे, दिन-रात इसका जप करे। वैदिक काल में वर्णाश्रम-धर्म द्वारा जाति की रक्षा होती थी। महाभारत के युद्ध के पश्चात् इस देश में अज्ञान और अंधकार छा गया। हमारे ऋषि-मुनियों ने धर्म-रक्षा का साधन तप को बतलाया। महात्मा बुद्ध ने त्याग-धर्म को सबसे ऊँची पदवी देकर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। बौद्धों की त्याग-शक्ति का मुक़ाबला करने के लिये शंकराचार्य ने संन्यासियों के बड़े-बड़े मठ स्थापित किए, जिन्होंने अपने त्याग और ज्ञान के बल से हिंदू-जाति के धर्म की रक्षा की। यद्यपि यह सच है कि इसलाम तलवार द्वारा फैला है, परंतु हम इस सत्य से भी इनकार नहीं कर सकते कि बाबा फ़रीद-जैसे भक्त ने भी लाखों भोले हिंदुओं को इसलाम में खींच लिया है। इस शक्ति का मुक़ाबला करने के लिये उस समय के सुधारकों ने हिंदू-धर्म में भक्ति-मार्ग का प्रचार किया। इसी

समय गुरु नानक ने सेवा-धर्म को महत्त्व देकर पंजाब में सिख-धर्म की स्थापना की।

सब उपाय करने पर भी रोग बढ़ता ही गया। भीतरी व्याधियों के अतिरिक्त इस जाति को बाहरी व्याधियाँ भी हड़प जाने के प्रयत्न में लगी हुई थीं। धर्म का आवरण-मात्र शेष रह गया है, सार निकल चुका है। हमने मरा हुआ पक्षी हाथ में पकड़ रक्खा है। हम बाह्य आडंबर और दिखावे को धर्म मानने लग गए हैं। सब प्रकार की पुरानी प्रथाएँ, जिनका अर्थ भी हम समझ नहीं सकते, हमारे गले का हार बनी हुई हैं। हमारे सब संस्कार केवल बच्चों का खेल-मात्र बन गए हैं। उपनयन संस्कार के समय बालक का पाँच मिनट के लिये दंड तथा मृगचर्म धारण कर लेना पर्याप्त समझा जाता है। एक मिनट में आचार्य के समीप जाकर, दूसरे मिनट में घर लौटकर, वह ब्रह्म-चर्य समाप्त कर देता और दूसरे दिन अँगरेज़ी पढ़ने के लिये स्कूल चला जाता है। हमारे बच्चों का सरकारी स्कूलों में जाना अधिक आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण समझा जाता है, तो ऐसा ही करो; पुराने संस्कारों की मिट्टी ख़राब करने से क्या लाभ ?

स्वामी दयानंद ने मूर्ति-पूजा का खंडन किया है, और युक्ति दी है कि इससे आर्य-धर्म का नाश हुआ है। यदि वास्तव में मूर्ति-पूजा का ऐसा भयंकर परिणाम हो, तो इससे बुरी वस्तु दूसरी नहीं हो सकती। परंतु इस मूर्ति-पूजा से भयंकर यह संसार-पूजा है, जिसने हमारी स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों तथा समाज का नाश कर हमें धर्म से विमुख कर दिया है।

स्वामी दयानंद ने इस पाखंड और दासता से बचने के लिये ही आर्य-समाज की नींव डाली थी। समाज तो एक संस्था है, परंतु इसका जो उद्देश है, उसकी पूर्ति के लिये हम इतिहास में अनेक बार प्रयत्न होते देखते हैं। वह उद्देश हमारी जातीयता की, हमारी सभ्यता

की रक्षा है। यह सभ्यता हमारी जाति की आत्मा थी। इस आत्मा को जाति के शरीर में प्रविष्ट करना ही समाज का कर्तव्य है।

इस जाति के दुर्भाग्य से आर्य-समाज के संचालक जाति के बाह्य चिह्नों के पीछे पड़े हुए हैं, और वास्तविक उद्देश से निश्चिंत हैं। उन्होंने समाज को ही मुख्य कर्तव्य समझ परस्पर लड़-झगड़कर दो पार्टियाँ बना ली हैं। इस विवाद का कारण दयानंद कॉलेज की शिक्षा-प्रणाली बनी, और पीछे से मांस के प्रश्न ने सिद्धांत का रूप धारण कर लिया। मेरी सम्मति में आर्य-समाज को सरकारी शिक्षा के प्रचार में भाग लेना चाहिए या नहीं, इस विषय में पं० गुरुदत्तजी बिलकुल ठीक कह गए हैं। इसके पश्चात् मांस का प्रश्न उठाकर दो पार्टियाँ बना देना ठीक न हुआ। आर्य-समाज की दो पार्टियाँ हो जाने से दोनों भिन्न-भिन्न संप्रदाय बनकर अलग-अलग काम में लग गईं, और आर्य-समाज का उद्देश जहाँ का तहाँ रह गया। इसके अतिरिक्त, पंजाब में जाति का हित चाहनेवाले जितने मनुष्य थे, वे सभी किसी-न-किसी पार्टी में सम्मिलित होकर पार्टी के ऐसे कट्टर पक्षपाती बन गए कि जाति का हित उनके हृदयों से कोसों दूर चला गया। इस काम का दूसरा परिणाम यह हुआ कि बचे हुए भद्र पुरुष, जिन्हें पुराने पंडितों के सिद्धांत अधिक पसंद आए, सनातनधर्म-सभाएँ बनाकर उस ओर लग गए। पंजाब में हिंदू-जाति की चिंता करनेवाला कोई न रहा।

अपने-अपने विचार के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को अपने समाज का काम ही उचित प्रतीत होता है। परंतु मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि पिछले तीन वर्ष के इतिहास ने, जिसमें मालाबार और कोहाट की घटनाएँ मुख्य हैं, यह बात स्पष्ट कर दी है कि हिंदू-क़ौम के नष्ट हो जाने पर इन पृथक्-पृथक् संस्थाओं के लिये कोई स्थान न रह जायगा। यदि कोहाट में हिंदू ही न रहेंगे, तो समाज और सनातन-

धर्म कहाँ रहेंगे ? हिंदू-जाति का शरीर था, तभी इसमें शंकराचार्य, नानक और दयानंद उत्पन्न हो सके। इस देश में राम और कृष्ण का नाम लेनेवाले थे, तभी इस देश में प्रताप, शिवाजी और वंदाबहादुर उत्पन्न हुए। जाति तो एक ही हैं, आर्य और हिंदू एक ही जाति के वाह्य नाम-मात्र हैं। शब्दों के भेद से जाति के अस्तित्व में कोई अंतर नहीं पड़ सकता। इस जाति ने हमारे लिये बड़े-बड़े सुधारक और वीर उत्पन्न किए हैं। इस जाति की रक्षा ही हिंदू-मात्र का मुख्य धर्म है। इस प्रश्न के सम्मुख दूसरे सब प्रश्न गौण हो जाते हैं। इस जाति का शरीर अत्यंत वृद्ध हो जाने से इसमें अनेक दोष उत्पन्न हो गए हैं; परंतु इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता और उच्च आध्यात्मिक जीवन है। संसार की किसी दूसरी जाति और धर्म का ऐसा उच्च आदर्श नहीं है। यह जाति संसार में जीवित रहेगी, तो यह आदर्श भी पूर्ण होगा। इस जाति की जीवन-रक्षा के लिये केवल हिंदू-संगठन की आवश्यकता है। इसलिये मेरा प्रत्येक हिंदू से अनुरोध है कि वह हिंदू-संगठन का ध्यान और हिंदू-संगठन का जप करे।

मेरा देश-प्रेम

जाति में जातीयता का भाव जागरित रहने से ही जीवन रहता है। इस भाव में कमी आ जाने से जाति में निर्बलता आ जाती है, और यह भाव मिट जाने से जाति नष्ट हो जाती है। यह भाव कृत्रिमता से नहीं उत्पन्न हो सकता। जातियों के निर्माण में बहुत समय लगता है, और यह काम प्रकृति के नियम के अधीन होता है। प्रथम अवस्था में मनुष्य केवल अपने व्यक्तित्व की ही चिंता करता है। यह समय पशुत्व का है। इसके पश्चात् पारिवारिक जीवन का काल आता है, और मनुष्य अपने जीवन को परिवार के लिये अर्पण कर देता है। पारिवारिक जीवन बढ़कर वंश का रूप ले लेता है, और मनुष्य अपने वंश के लिये अपने जीवन को अर्पण कर देता है। बहुत-से वंश बढ़कर एक जाति का रूप धारण कर लेते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का कुछ अस्तित्व नहीं। शनैः-शनैः जाति में अनेक भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और रुधिर के एक होने से एक भाषा, एक शासन और वीर-पूजा के भाव का प्रचार हो जाता है। यही भिन्न-भिन्न शृंखलाएँ जाति को एकता के बंधन में बाँधे रखती हैं। इन संबंधों के अभाव में भी मनुष्य एकत्र रहकर एक शासन से शासित हो सकते हैं; परंतु इनमें जातीयता की शृंखला नहीं रह सकती। आस्ट्रिया के शासन के नीचे अनेक जातियाँ कई शताब्दियों तक इकट्ठी रहीं, परंतु पिछले महायुद्ध के समय जब दबाव पड़ा, वे सब छिन्न-भिन्न हो गईं; क्योंकि इन्हें मिलानेवाली शक्ति वर्तमान नहीं थी।

राष्ट्रीय अथवा जातीय भाव की दृढ़ता होने पर दो अन्य दृश्य हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। पहला यह कि जब किसी जीवित

राष्ट्र या जाति में अन्य जाति के बहुत-से मनुष्य आकर प्रविष्ट हो जाते हैं, तो वे उस जाति के रीति-रवाज और वेश-भूषा-भाषा को अपनाकर उस जाति का अंग बन जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरा यह कि जब किसी जाति के मनुष्यों की एक संख्या दूसरी जाति की सभ्यता और संस्कृति को अपना लेती है, तो वह उस देश में रहती हुई भी दूसरी जाति का अंग बन जाती है। उदाहरण के लिये भारत में रहनेवाले बहुत-से मनुष्यों ने भारत में रहते हुए भी अपने को अरबी बना लिया है। इन लोगों के रीति-रवाज, नाम तथा जीवन-निर्वाह का सब ढंग अरबी हो गया है। यद्यपि जातीयता का भाव स्वयं ही उन्नति और अवनति ही करता रहता है, परंतु विदेशी शक्तियों से मुक़ाबला होने पर जातीयता के भाव का अभाव जाति के लिये घातक प्रमाणित हो जाता है। मिसर की राष्ट्रीयता और सभ्यता संसार में बहुत पुरानी गिनी जाती थी। इसलाम के आक्रमणों के प्रभाव से वह सब कुछ नष्ट हो गया, और मिसर के निवासी अरबी-भाषा और संस्कृति को अपनाकर अरबी बन गए। फ़ारस की अवस्था इसकी अपेक्षा अच्छी रही। यद्यपि उन्हें अपना मज़हब छोड़ना पड़ा; परंतु उन्होंने अपनी भाषा और प्रथाओं को नहीं छोड़ा, और अरबी विजेताओं को अपनी सभ्यता तथा भाषा देकर अपनी जाति में सम्मिलित कर लिया। यहाँ तक कि जब इसलाम फैलता हुआ भारत तक पहुँचा, तो यहाँ मुसलमानों ने भी फ़ारसी-भाषा और शाहनामे को इसलाम का अंग मानकर अंगीकार कर लिया। यदि भारत के मुसलमान ईरानियों से शिक्षा लेते, तो उनके लिये उचित था कि भारतीय भाषा और सभ्यता से प्रेम रखते हुए भी वे इसलाम को ग्रहण करते, और नवीन मत ग्रहण करने पर भी राष्ट्र और जाति का अंग बने रहते। परंतु खेद है कि भारतीय मुसलमानों ने ईरानी शासकों के प्रभाव में

आकर अपनी सभ्यता, भाषा तथा जातीयता को भी छोड़ दिया।

इस संबंध में इँगलैंड का दृष्टांत हमारे और मुसलमान भाइयों के लिये उपयोगी होगा। ईसा की छठी शताब्दी में इँगलैंड में ईसाई-धर्म का प्रचार हुआ। राजा, प्रजा, सभी ईसाई हो गए, और उन्होंने रोम में रहनेवाले पोप को अपना धार्मिक नेता मान लिया। थोड़े समय पश्चात् इँगलैंड में राष्ट्रीयता के भावों का प्राबल्य हुआ। उन्होंने ईसाई होते हुए भी पोप की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। यही अवस्था जर्मनी की भी हुई। योरप के शासकों और पोप में परस्पर उतरा-चढ़ी का इतिहास विशेष मनोरंजक है। इँगलैंड में समय-समय पर इस प्रकार के नियम पास किए गए, जिनसे इँगलैंड ने ईसाई होते हुए भी दूसरी जाति का धार्मिक शासन स्वीकार न करने में सफलता प्राप्त की। इँगलैंड में धार्मिक सुधार का आंदोलन निरा धार्मिक ही न था। इसकी तह में राष्ट्रीयता का भाव काम कर रहा था। इसी कारण से इँगलैंड की पार्लियामेंट ने अपने राजा को पोप के चगुल से निकलने में बहुत सहायता दी। यहाँ तक ही नहीं, बल्कि जब स्पेन के रोमन कैथलिक राजा ने इँगलैंड को पोप के अधीन करने के लिये उस पर भयंकर समुद्री आक्रमण किया, तो इँगलैंड के रोमन कैथलिक संप्रदाय के लोग भी उसके विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार हो गए। इसका कारण स्पष्ट है। इँगलैंड के रोमन कैथलिक रोमन कैथलिक होने पर भी राष्ट्रीयता के विचार से शून्य नहीं थे। उन्होंने हमारे मुसलमान भाइयों की भाँति राष्ट्रीयता को तिलांजलि नहीं दे दी थी। हमारे राजनीतिक नेताओं ने हिंदू-मुसलिम प्रश्न पर गंभीरता से विचार नहीं किया। वे समझते हैं कि हिंदू-संगठन को बुरा कह देने से, हिंदुओं और मुसलमानों को ज्यों-त्यों एक स्थान पर मिला देने से ही एकता हो जायगी। एकता एक भाव के होने से ही हो सकती है; ईंट और रोड़े इकट्ठे कर देने

से एकता नहीं हो सकती। सच्ची एकता उसी समय होगी, जब मुसलमान अपने को भारतीय राष्ट्र—हिंदोस्तानी क़ौमियत—में सम्मिलित कर लेंगे। इस काम में सफलता न होने का कारण यह है कि इस समय भारत पराधीनता की अवस्था में है। इस समय भारत के हित का कोई काम करने के लिये साहस और बलिदान की आवश्यकता है। मुसलमानों को अन्य मुसलमान देश स्वतंत्र दीखते हैं, और वे उनसे संबंध जोड़ना चाहते हैं। हमारे देश में वास्तविक एकता तभी होगी, जब मुसलमान भाई इस देश और इसके निवासियों से प्रेम करना सीखेंगे।

यदि मुसलमान इस देश के निवासियों से प्रेम करना नहीं सीखते, तो एकता का एक दूसरा ढंग भी है। एकता-एकता की रट लगाने से कुछ लाभ नहीं। इसका उपाय यह है कि हमारे देश के मुसलमान अपने को एक दूसरी जाति मानकर भी यह अनुभव करने लगें कि उनका दिल हिंदुओं के साथ मिलकर उन्नति करने में ही लगा हो। परंतु यह तभी हो सकता है, जब हिंदुओं में पूर्ण संगठन और शक्ति होगी। इसलिये यह प्रकट है कि संगठन में ही जाति और देश का सच्चा हित है।

हमारा नया आदर्श

एक नौजवान मेरे पास आया। उसने मुझसे पूछा—बताइए मैं क्या करूँ?

मैंने कहा—इस प्रश्न का उत्तर देना मेरे लिये असंभव है, जब तक मैं यह न जान लूँ कि तुम्हारा आदर्श क्या है। यदि तुम्हारे सम्मुख अपने जीवन को सुखमय बनाने का आदर्श है, और उसके लिये तुम अपने देश को बेचने की परवा नहीं करते, तो तुम्हारे लिये अनेक दरवाज़े खुले हैं। सारी दुनिया उस ओर दौड़ी जा रही है, तुम भी उसके पीछे हो लो, दौड़ते जाओ, या लँगड़ाते जाओ, कहीं-न-कहीं आराम की जगह पहुँच ही जाओगे।

नवयुवक ने कहा—मुझे आराम की आवश्यकता नहीं, परंतु मेरे सिर पर बहुत-से उत्तरदायित्व भी हैं; मुझे उनका भी प्रबंध करना है।

मैंने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है; परंतु हमारे देश की अवस्था ऐसी पेचीदा है कि किसी भी उत्तरदायित्व का पूरा करना कठिन है। हमारे नवयुवकों के सम्मुख जीवन-संग्राम का क्षेत्र बहुत विकट है। हम देश-भक्ति का भी दम भरते हैं, और उत्तरदायित्व का भी विचार करते हैं। हमें चाहिए, हम देश के प्रति उत्तरदायित्व अथवा संबंधियों के प्रति उत्तरदायित्व में से एक मार्ग चुन लें। हम दोनों मार्गों पर एकसाथ नहीं चल सकते।

मेरी बात सुन उसने एक और प्रश्न पूछा। उसने कहा—क्या हम देश की उन्नति तथा सांसारिक उन्नति एकसाथ नहीं कर सकते?

मैंने कहा—जिन देशों में अवस्था अनुकूल हो, वहाँ वैयक्तिक उन्नति तथा देश की उन्नति एकसाथ हो सकती है; परतु देश के पराधीन

होने पर ये दोनों भी परस्पर विरुद्ध हो जाती हैं, और कोई व्यक्ति अपने लाभ की चिंता न करके ही देश-हित कर सकता है। उदाहरण के लिये महायुद्ध के समय मिस्टर लायड जॉर्ज इँगलैंड के मंत्री थे। उन्होंने युद्ध में काम करके देश का भी हित किया, और स्वय भी उच्च पद और सम्मान प्राप्त किया। परतु जिस भारतवासी ने युद्ध में सरकार की सहायता की, उसने देश के लिये कुछ नहीं किया।

इस समय हमारे देश में वही मनुष्य धन कमा सकता है, जो अपने हित के लिये देश का वलिदान कर दे। मुझे तो सब ओर ठगी का वाज़ार गरम दीखता है, और ईमानदारी से रुपया कमाने का कोई ढंग दिखाई नहीं देता। प्रत्येक धन कमानेवाला मकडी की भाँति जाला तानकर शिकार की प्रतीक्षा में वैठा रहता है। कोई वगलाभगत वन, आँखें मूँद जनता को फँसाता है; कोई वेश्या की भाँति सजधज और आडंवर कर लोगों को ठगता है। शराव के व्यापारी भड़कीले विज्ञापन लगाकर नौजवानों को प्रलोभन में फसाते हैं। सिगरेटों के एजेंट मुफ़्त सिगरेटें बाँटकर वच्चों की आदतें विगाडते हैं। विदेशी कपडे के व्यापारी अपने देश के व्यापार का नाश कर मालामाल वनते हैं। खाँड़ के व्यापारी विदेशी खाँड में गुड मिलाकर देसी खाँड वनाते है। और तो और, अव घी के एजेंट भी बन गए हैं, जो योरप के घी को बाज़ार में भेजकर उसे वार का घी कहकर बाज़ार में वेचेंगे। कोई उनसे पूछे कि तुम ऐसा क्यों करते हो, तो उनका उत्तर होगा—'आप ही वताइए, ईमानदारी से कौन रुपया कमाता है?' क्या वकील लोग?, जो निर्धन भाइयों को मुक़दमेबाज़ी में फसाकर स्वय मोटरें ख़रीदते और कोठियाँ वनाकर रहते हैं। क्या कौंसिलों के मेंवर?, जो अपने वैयक्तिक लाभ के लिये जनता में विरोध फैलाते हैं। क्या ज़मींदार और रईस?, जो अपने भोग-विलास में प्रजा के लाखों रुपए उडा रहे हैं। परि-

णाम यह निकला कि जो व्यक्ति देश में धन कमाने की चेष्टा करता है, वह देश-भक्ति के मार्ग से उलटे मार्ग पर चलता है। यदि हम देश-हित करना चाहते हैं, तो हमें दुनिया के मार्ग को छोड़ देना पड़ेगा।

देश का हित क्या है और किस बात में है, इस प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है, और हिंदू-मुसलमान, शासित और शासक सब इसे स्वीकार कर चुके हैं कि वह स्वराज्य है, और उसी से हमारे देश की अवस्था सुधर सकती है। कुछ लोग पूछेंगे कि स्वराज्य से क्या लाभ है? हम अपने-अपने संप्रदाय की उन्नति करेंगे, जब हमारा संप्रदाय फैल जायगा, तब हमें स्वयं स्वराज्य मिल जायगा। इसके बिना तो स्वराज्य मिल ही नहीं सकता। भारत में अनेक संप्रदाय हैं। यदि सभी संप्रदाय फैलने की चेष्टा करें, तो ऐसा कोई दिन नहीं आ सकता, जिस दिन संपूर्ण भारत में एक ही धर्म हो जाय। परतु यदि सब संप्रदायों के मनुष्य मिलकर प्रयत्न करें, तो स्वराज्य मिल सकता है। स्वराज्य के बिना कोई संप्रदाय पूर्ण उन्नति नहीं कर सकता। स्वराज्य की प्रबल इच्छा ही देश में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न कर सकती है। इस इच्छा के बहुत प्रबल हो जाने पर हमारे अन्य सभी भेद-भाव स्वयं मिट जायँगे, और हम-में सच्ची राष्ट्रीय एकता उत्पन्न हो जायगी।

क्या स्वराज्य के लिये हम अपना मज़हब छोड़ दें? नहीं, कभी नहीं। स्वराज्य का तो प्रयोजन ही हमारे कष्टों का निवारण है। स्वराज्य मिलने पर ही हम अपने धर्म के विस्तार और उसकी रक्षा का पूरा प्रबंध कर सकेंगे। एक मनुष्य ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ है। वह वेद का स्वाध्याय या अपने धर्म का प्रचार करना चाहता है। उसका पहला कर्तव्य यह है कि वह पहले ज़ंजीरों से मुक्ति प्राप्त करे। स्वतंत्रता प्राप्त करने पर वह चाहे जिस काम में अपना

जीवन लगा सकता है; परंतु जब तक वह अपने जीवन का मालिक नहीं, वह कुछ भी नहीं कर सकता। इस समय हमें स्वराज्य के अतिरिक्त अन्य किसी बात का ध्यान न करना चाहिए।

परंतु सबसे बडा प्रश्न यह है कि स्वराज्य मिल कैसे सकता है? स्वराज्य हिंदू-मुसलिम एकता के बिना मिलना असभव है, परंतु दुःख यह है कि हमारे मुसलमान भाई स्वराज्य की इच्छा नहीं करते। उन्होंने स्वराज्य के महत्त्व को समझा ही नहीं। उनकी दृष्टि इसलाम तक ही परिमित रहती है। मुसलमान-नेता हिंदुओं को धमकाते हैं—देखो, तुम हमारी सहायता बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। तुम संगठन का प्रयत्न छोड़ दो, और हमारा आश्रय माँगो। हमसे समझौता करो, नहीं तो स्थान-स्थान पर हिंदू-मुसलिम झगडे का दृश्य देखोगे। इस प्रकार की एकता करना हिंदुओं के लिये मृत्यु को बुलाना है, और ऐसी एकता से स्वराज्य मिलना भी असंभव है। यह मार्ग हिंदुओं के लिये आपत्तिजनक है। किसी भी प्रकार के भय से डरना मृत्यु का चिह्न है। यदि कोई मनुष्य मुझे डराकर मित्रता करना चाहता है, तो वह मुझे अपना दास बनाता है। वास्तविक मित्रता तभी होगी, जब मैं उसके बराबर मैदान में उतरूँगा। स्वराज्य के मार्ग पर हमारे लिये तभी चलना संभव होगा, जब हम मुसलमानों के दिल में स्वराज्य की आवश्यकता का अनुभव करा देंगे। परंतु यह तभी हो सकेगा, जब हिंदुओं में जातीय संगठन दृढ़ हो जायगा। शायद यह बात कठिन प्रतीत हो। कठिन हो या सरल, मार्ग एक ही है। जब तक हम दृढ़ निश्चय करके प्रयत्न न करेंगे सफलता मिलने की कोई संभावना नहीं हो सकती।

अभिप्राय यह है कि देश-हित और वैयक्तिक हित के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। देश-हित का उपाय, स्वराज्य का मार्ग, हिंदू-संगठन के अतिरिक्त दूसरा नहीं।

सामयिक धर्म

भीष्म पितामह से पूछा गया, 'धर्म क्या है ?' यों तो धर्म के विषय में प्रत्येक मनुष्य अपने को पंडित मानता है, परंतु पितामह को इसका कोई उत्तर न सूझा। उन्होंने केवल इतना ही कहा—धर्म का तत्त्व गुप्त है। सभी ऋषि-मुनियों ने धर्म के विषय में अपना मत प्रकट किया है, और सबका मत भिन्न-भिन्न है।

जब भीष्म पितामह-जैसे त्यागी इस प्रश्न का उत्तर न दे सके, तो किसी दूसरे मनुष्य के लिये इस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करना वृथा प्रयास ही है। परंतु हमारे लिये पितामह की अपेक्षा इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक सरल है। हमारे सम्मुख उस समय से लेकर आज दिन तक का इतिहास प्रस्तुत है, और हम उसकी सहायता से धर्म के निरूपण के लिये चेष्टा कर सकते हैं।

बहुत लोग कहते हैं कि धर्म अपरिवर्तनीय सदा तथा एकरस रहने-वाली वस्तु है। मैं इस कथन से सहमत नहीं। बालक का धर्म कुछ और है, ब्रह्मचारी का कुछ और। गृहस्थ का और, और संन्यासी का उससे भी भिन्न। शांति के समय धर्म का रूप कुछ और होता है, युद्ध के समय कुछ और। ब्राह्मण का धर्म और है और क्षत्रिय का और। अभिप्राय यह कि धर्म सदा देश-काल के अनुसार बदलता रहता है।

धर्म की परिवर्तनशील अवस्थाओं का अनुशीलन हम अपनी जाति के इतिहास में बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। जिस समय महात्मा बुद्ध ने अपने महान् धर्म का प्रचार आरंभ किया, उस समय हमारे देश का धर्म यज्ञ-धर्म का रूप ग्रहण कर चुका था। सारी

जाति ब्राह्मणों के अनुचित दबाव के नीचे आ चुकी थी। ब्राह्मणों का काम जनता को भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों में लगाना था। इन यज्ञों और संस्कारों को कर्मकांड का नाम दिया गया। कोई दिन वर्ष में ऐसा न था, जिस दिन के लिये कोई विशेष यज्ञ न हो। शनैः-शनैः इस कर्मकांड ने भयंकर रूप धारण कर लिया। बड़े-बड़े यज्ञों में बहुत-से पशुओं का बलिदान किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध ही सबसे बड़ा धर्म रहा होगा। देश में शांति-स्थापन न हो जाने पर ब्राह्मणों को चिंता हुई, कहीं क्षत्रिय लोग करुण-हृदय होकर निष्क्रिय न हो जायँ। इसलिये उन्होंने यज्ञों में पशु-बलिदान की प्रथा आवश्यक ठहरा दी। यज्ञ में बलि दिए गए पशुओं के मांस-भक्षण का निषेध नहीं था, इसलिये यह प्रथा बहुत फैल गई। उस समय इसी कर्मकांड का प्रचार था। बुद्ध के हृदय में कर्मकांड से घृणा उत्पन्न हुई। इस कर्मकांड का आधार वेद थे। इसलिये बुद्ध भगवान् ने कर्मकांड के साथ ही वेदों को भी जवाब दे दिया। बौद्ध-धर्म में धर्म का आधार कर्मों की पवित्रता थी। बुद्ध के मत में धर्म के लिये ईश्वर तथा वेद की कोई आवश्यकता नहीं मानी गई। शुभ कर्म ही सब कुछ हैं। कर्मों का सिद्धांत ही संसार का नियन्त्रण करता है। मनुष्य के कर्म ही उसे ऊपर या नीचे ले जाते हैं। बुद्ध का धर्म आचार (Morality) था।

ब्राह्मण लोग बुद्ध के आचार-धर्म के विरुद्ध कुछ न कह सकते थे। उन्होंने इसकी न्यूनता को पहचान लिया, और वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थों द्वारा इस धर्म के सिद्धांतों पर आक्रमण करने लगे। यह अवस्था देख बौद्ध-धर्म भी सिद्धांतों पर ध्यान देने लगा। कुमारिल भट्ट और शंकर के समय में बौद्ध-धर्म एक धार्मिक दर्शन (Phylosophy) का रूप धारण कर चुका था। शंकर ने अपनी बुद्धि के प्रभाव से इस धार्मिक दर्शन (Phylosophy of Religion) को परास्त

कर एक नवीन धार्मिक दर्शन का आविष्कार किया। इस काल में न कर्मकांड का प्राबल्य रहा, न आचार का। यह समय केवल दार्शनिक चिंतन का था।

इसलामी आक्रमणों से हिंदू-धर्म में एक नवीन परिवर्तन हुआ। यह लहर राम तथा कृष्ण की भक्ति की थी। सूर, तुकाराम और तुलसी का धर्म राम और कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। इन्हें कोई दूसरी बात समझ में नहीं आती थी। वे अपने इष्ट-देव की भक्ति में लवलीन थे। उन्हे इनकी मूर्तियों के दर्शन में ही जीवन की सफलता दीखती थी। हम प्रबल युक्तियों से मूर्ति-पूजा का खंडन कर सकते हैं; परंतु यह नहीं कह सकते कि जो मनुष्य अपने इष्ट-देव के प्रेम में मस्त होकर उसकी मूर्ति के सामने नाचता और उसके गुण गाता है, वह ग़लती कर रहा है। उसके आभ्यंतरिक भाव प्रकट हो रहे हैं। मूर्ति मे कुछ शक्ति हो या न हो उसकी श्रद्धा उसे नचा रही है और वह संतुष्ट है। ससार में सहस्रों मनुष्य भक्ति में ही सच्चा धर्म समझते हैं।

वीर-पूजा मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। सारा पश्चिम प्रभु मसीह के चरणों में लोट रहा है। इसलाम मुहम्मद से बढ़कर किसी को नहीं समझता। वीर-पूजा मनुष्य का वह गुण है, जो उसकी सामाजिक संस्कृति और शिक्षा का फल है। बहुत-से मनुष्यों की तुलना करने से जान पड़ेगा कि किसी मनुष्य का स्वभाव अधिक करुण होता है, उसे दया-धर्म सबसे अच्छा प्रतीत होता है। किसी मनुष्य में उत्साह अधिक होता है, उमे वीरता की बातें ही भाती हैं। कोई युक्ति-वादी होता है, उसे दर्शन-शास्त्र से प्रेम होता है। कोई भक्ति-मार्ग का उपासक होता है। कोई ज्ञान-ध्यान का भक्त होता है। इन भिन्न-भिन्न रुचियों के मनुष्यों के लिये भिन्न-भिन्न धर्मों की आवश्यकता होना स्वाभाविक है। मनुष्य-समाज रुचि तथा प्रकृति के भेद से भिन्न-

भिन्न समाजों में विभक्त है, और उन्हें अपने स्वभाव के अनुकूल धर्म ही भाता है।

वैदिककाल में समाज वर्णाश्रम-धर्म में बँधा था। उस समय धर्म का अर्थ कर्तव्य (Duty) समझा जाता था। वर्ण के अनुसार सब लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। भिन्न-भिन्न आश्रमों में जाकर लोग अपने कर्तव्य का पालन करते थे। वर्णाश्रम-धर्म की नींव में यह सिद्धांत काम करता था कि समाज का प्रत्येक मनुष्य समाज के हित के लिये जीवन व्यतीत करे। इस सिद्धांत को यज्ञ के नाम से पुकारा गया है। यज्ञों का क्रम यहाँ से आरंभ होकर इतना फैला कि सारा समाज भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों के जाल में फस गया, जिसका वर्णन हम कर्मकांड के प्रकरण में कर आए हैं।

धर्म के इन परिवर्तनों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह समय जाति के लिये एक नवीन धर्म का समय है, और वह नया धर्म 'सगठन' है। हिंदू-जाति के सारे इतिहास को पढ़कर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस जाति ने संगठन-धर्म पर बहुत कम ध्यान दिया है। जब मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता है, तो उसे केवल अपनी भीतरी कमज़ोरी का ध्यान करना पड़ता है। परंतु यह संसार युद्ध-क्षेत्र है; यहाँ कोई जाति अपनी प्राकृतिक अवस्था में नहीं रह सकती। युद्ध प्राकृतिक अवस्था नहीं है। पराधीनता प्राकृतिक अवस्था नहीं है। हिंदुओं को कई शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध लड़ना पड़ा है। इस अवस्था में प्राकृतिक धर्म काम नहीं दे सकता था। बाहर के आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि एक विदेशी धर्म और विदेशी सभ्यता स्थायी रूप से इस देश में जम गई। इसके साथ ही पश्चिम की शक्तिशाली सभ्यता अपने पूर्ण वैभव के साथ इस देश में अवतरित हुई है। इस अवस्था में अपनी जाति की सभ्यता की रक्षा के लिये हिंदुओं को प्रयत्न करना पड़ेगा। इन महान्

शक्तियों के साथ कई छोटी-छोटी हिंदुओं की राष्ट्रीयता की घातक शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं। इस समय यदि किसी जाति को जीवन-रक्षा के लिये संग्राम की आवश्यकता है, तो वह हिंदू-जाति है। इस समय एक ही धर्म हिंदुओं को बचा सकता है, और वह धर्म संगठन है।

मैं हिंदू-मात्र से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने इस सामयिक धर्म को पहचानें तथा इसके लिये बलिदान करने के लिये प्रस्तुत हो जायँ।

हमारा रोग

कई मनुष्यों को इस बात का निश्चय नहीं होता कि जाति को भी व्यक्ति की भाँति व्याधि और रोग लग सकते हैं, और उन रोगों की भी चिकित्सा करनी पड़ती है। मनुष्य की बीमारी को पहचानना अधिक कठिन नहीं होता। वह स्वयं अपनी पीड़ा को प्रकट करने की चेष्टा करता है; परंतु रोग के कठिन और गहरे हो जाने पर बड़े-बड़े डॉक्टर और वैद्य भी उलझन में पड़ जाते हैं। जाति के रोग का निदान इससे भी कठिन है। जाति स्वयं अपनी पीडा को प्रकट नहीं कर सकती। जब कभी उसका दुःख प्रकट भी हो जाता है, तो भी उसे रोग नहीं समझा जाता, और उसकी चिकित्सा का कोई उपाय नहीं किया जाता। मैं स्वयं उलझन में हूँ, मुझसे प्रश्न किया जाता है कि बताओ, जाति के शरीर में रोग कहाँ है? हमें कोई रोग नहीं दीखता। मैं कहता हूँ, हम सब पराधीन हैं, क्या पराधीनता रोग नहीं है? जाति भूखी है; क्या भूख और निर्धनता रोग नहीं है? इस देश में प्रति वर्ष लाखों मनुष्य अकाल-मृत्यु से मरते हैं; क्या यह रोग भयकर नहीं है? जब एक हिंदू अपनी जाति से दूसरी जातियों की तुलना करता है, तो स्पष्ट स्वीकार कर लेता है कि हिंदू-जाति में जीवन का अभाव है। क्या यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कि हमारी जाति रोगग्रस्त है।

हम सब अनुभव भी करते हैं कि हम रोगी हैं, परंतु जाति के रोग को पहचाननेवाले डॉक्टर नहीं हैं! जब कोई डॉक्टर हमें नुसख़ा भी लिख देता है, तो न हम औषध-सेवन करते हैं और न उसकी सलाह पर चलते हैं। हो तो क्या हो? अपनी व्याधि जानकर, उसकी

औषध जानकर भी हम इतने विवश हैं कि कुछ नहीं कर सकते। पिछले दो-तीन वर्षों की घटनाओं को देखकर जाति ने अपने कष्ट का अनुभव किया है, और यह पुकार सुन पड़ती है कि 'संगठन' की आवश्यकता है। संगठन किसी व्यक्ति-विशेष का काम नहीं है। इसमें सांप्रदायिकता की गंध नहीं है। रुग्ण जाति की आत्मा ने स्वयं ही अपने लिये 'संगठन' की ओषधि तज़वीज़ की है। प्रत्येक हिंदू यह कहता सुनाई देता है कि हम संगठन के बिना बच नहीं सकते। परंतु एक कदम आगे चलकर आप उससे पूछिए, तुमने सगठन के लिये क्या किया है? क्या तुम संगठन के सभासद हो? क्या तुमने अपने भाइयों को सगठन का मॅंबर बनाने का यत्न किया है? क्या तुमने संगठन के काम के लिये अपना कुछ समय अर्पण किया है? वह बेचारा चुप हो जायगा, या आपको टालने के लिये कहेगा, अजी क्या करें, कोई कुछ करने का साहस नहीं करता; हमारे नेता कुछ नहीं करते, इत्यादि-इत्यादि। मान लिया, आपका कहना ठीक है। कोई कुछ नहीं करता। नेता केवल नाम के भूखे हैं, वे कुछ नहीं करते। परंतु इससे क्या आपका कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व यहीं समाप्त हो जाता है। आप इतना ही कीजिए, जहाँ हिंदू-सभा हो उसके सभासद बन जाइए। कम-से-कम सप्ताह में एक दिन मिल-बैठकर विचार ही कीजिए। कानो में शब्द जाता है, परंतु हृदय पत्थर हो चुका है। वह अनुभव ही नहीं करता। सोते हुए को जगाया जा सकता है; परंतु जागते को कौन जगा सकता है? क्या आप अपने रोग का इससे भी बड़ा प्रमाण चाहते हैं? मैं न आर्य-समाज के विरुद्ध हूँ, न कांग्रेस के। जो कुछ कहता हूँ, वह इस उद्देश से कि जो कोई ग़लती पर हो, वह यदि अपनी ग़लती समझ जाय, तो उसे ठीक कर ले। मुझे इन दोनों सस्थाओं के काम करने के ढंग पर आपत्ति है। इन दोनों में दिखावा बहुत अधिक आ गया है। रुग्ण जाति अपनी निर्बलता को दिखावे से छिपाना

चाहती है, और बलवान् होने का ढोंग कर रही है। यह बड़ी आपत्ति जनक अवस्था है। ईश्वर का भरोसा छोड़कर हम उसकी पूजा का ढोंग कर रहे हैं। रोगी जाति में पवित्रता और धर्म नहीं हो सकता। हम पवित्रता और धर्म का आडंबर कर रहे हैं, और बाह्य चिह्नों पर मर मिटने के लिये तैयार हैं। हम दिखावे में फँसकर नीरोग होने की चिंता भी नहीं करते, यही बड़े दुःख का विषय है।

दिखावे से थोड़ा-बहुत लाभ भी होता है। जब कोई संस्था ख़ूब काम करती है, और जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये थोड़ा दिखावा भी करती है, तो वह लाभदायक होता है; परंतु जब वास्तव में काम कुछ भी नहीं, तो दिखावा ही वास्तविक काम का स्थान ले लेता है, और जलसे करना ही उद्देश बन जाता है। यद्यपि ऐसी जाति उन्नति करती प्रतीत होती है, परंतु वास्तव में वह अवनति के गढ़े में गिर रही होती है। दिखावा करना गिरी हुई जातियों का लक्षण है, और इसी पर उनके जीवन का भरोसा होता है। वे समझती हैं कि दिखावा जोश उत्पन्न करने का तरीक़ा है; परतु फल यह होता है कि वास्तविकता निकलकर केवल दिखावा-ही-दिखावा रह जाता है। हमारे रोग की चिकित्सा का एक ही उपाय है, और वह बलिदान का भाव है।

जिस समय रूस और जापान में युद्ध हो रहा था, जापानी सेना ने एक रूसी क़िले पर आक्रमण किया। क़िले तक पहुँचने के लिये क़िले की खाई को भरना आवश्यक था। जापानी सैनिकों ने अपने साथियों के मृतक शरीर खाई में डाल दिए; परंतु इससे वह भर न सकी। इस पर उन घायल सिपाहियों को, जिनके जीवन की कोई आशा न थी, लाकर उस जगह डाल दिया गया। इससे भी काम न बना। यह देख सैकड़ों मन-चले नवयुवक जापानी सैनिक आगे बढ़कर खाई में कूद पड़े। खाई भर गई। उन वीरों के मृतक शरीरों पर से

जाकर जापानी सेना ने क़िला फ़तह कर लिया। यद्यपि उन वीरों के नाम हम नहीं जानते, परंतु जापान की शक्ति और कीर्ति की नींव उन्हीं के बलिदान पर स्थिर है।

जिस समय आप थोड़ा-बहुत काम करके अपनी तारीफ़ और बड़ाई अख़बारों और जलसों में सुन लेते हैं, तो वह बलिदान नहीं रहता, वह तो एक दूकानदारी बन जाता है। वास्तव में दिखावा और बलिदान परस्पर विरोधी शब्द हैं। दिखावे का रोग चुपचाप और गुप्त बलिदान से दूर हो सकता है।

कुछ लोग पूछते हैं, क्या हिंदू-जाति का रोग किसी प्रकार दूर हो सकता है? मैं कहता हूँ, हाँ, हो सकता है, यदि कुछ नवयुवक प्राणों की बाज़ी लगाकर जाति-हित के लिये कर्म-क्षेत्र में कूद पड़ें।

मेरा नया कार्यक्रम

सन् १८५७ के विप्लव के बाद से भारत में उतरा-चढ़ी और जीवन-संघर्ष समाप्त होकर शांति छा जाती है। इससे पूर्व जो जीवन के चिह्न जहाँ-तहाँ किसी-न-किसी रूप में प्रकट होते ही रहते थे, वे अब एकदम लुप्त हो जाते हैं, मानो दीपक अपना अंतिम प्रयत्न समाप्त करके बुझ जाता और संघर्ष समाप्त हो जाता है। एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अँगरेज़ी शासन स्थापित हो जाता है। लड़ते-भिड़ते, शोक और दुःख से तड़पते हुए देश में एक निस्तब्धता छा जाती है। हिंदुओं में जातीयता के भाव की कमी थी, इसीलिये ये अन्य जातियों के आक्रमण का शिकार हुए और पराधीनता के पाप में फसे। यदि जातीयता का भाव होता, तो समय पाकर ये संगठित रूप में उठ खड़े होते। इस अभाव के कारण ये विदेशी जातियों के आक्रमण को सहते रहे और इनकी मुक़ाबला करने की शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई। इस शक्ति के नष्ट होने से ये निर्जीव-से हो गए, और इन्हें सबल मुसलमान शनैः-शनैः हड़पने लगे।

इस निर्जीवता और निष्क्रियता के समय में ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज ने धार्मिक सुधार का कार्य आरंभ किया। इससे थोड़ी-बहुत सचेष्टता तो हुई, परंतु वह बहुत थोड़ी और सूक्ष्म थी। इसके पश्चात् कांग्रेस ने नए सिरसे देश में जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा की। कांग्रेस के संचालकों का अभिप्राय चाहे जो रहा हो, हिंदुओं ने कांग्रेस के काम को अपना लिया। कांग्रेस का कार्य-क्रम क्या था? क्रम-क्रम से प्रत्येक प्रांत में देश-भर के उच्च शिक्षित व्यक्ति वर्ष-भर में एक दिन एकत्र होकर अपने हृदयों के उद्गार निकाल लेते थे। एक विशद

और सुंदर पंडाल में एकत्र हो अनेक प्रस्तावों पर विचार कर वे अपने-अपने घर जा बैठते थे । इन प्रस्तावों में कुछ तो सरकार से अधिकारों की प्रार्थना और कुछ शिकायतें होती थीं।

सं० १८६३ में, लाहौर में, पहली कांग्रेस हुई थी। उसे देखकर आर्यसमाज की यही धारणा हुई थी कि यद्यपि कांग्रेस से देश में थोड़ी-बहुत जागृति उत्पन्न हुई है, परंतु यह स्वयं एक ढोंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पंजाबियों का स्वभाव अन्य प्रांतों से कुछ निराला है। आर्य-समाज के प्रभाव के कारण इन लोगों में बलिदान का भाव और उसके लिये सम्मान थोड़ी-बहुत मात्रा में पाया जाता है। पंजाब की श्रद्धा ठोस काम मे अधिक है। ये केवल बातों में ही नहीं भूले रहते, और इनमें प्रांतिक संकीर्णता भी नही है। जिस समय देश की अवस्था निश्चेष्ट और निराशाजनक थी, स्वामी दयानद गुजरात से चलकर पंजाब में आए। पंजाबियों ने स्वामीजी के काम को अपना लिया, और काम में लग गए। आर्य-समाज के काम का यह प्रभाव हुआ कि मुसलमानों, सिखों तथा अन्य संप्रदायों में भी जागृति उत्पन्न हो गई। ये लोग चाहे आर्य-समाज को बुरा कहें, और उसे अपना शत्रु समझें, परंतु इन्हें आर्य-समाज का धन्यवाद करना चाहिए कि उसने इन्हें सावधान कर दिया है। जो हो, आर्य-समाज की शिक्षा से हमने यह सीखा कि इस विस्तृत देश तथा इसके अनेकों संप्रदायों में जीवन डालने के लिये बड़े साहस की आवश्यकता है। केवल व्याख्यानों से कुछ नहीं बन सकेगा। व्याख्यानों से उत्पन्न हुआ आंदोलन गहरा नहीं जा सकता। जाति और देश में गहरा आंदोलन उत्पन्न करने के लिये बड़े साहस, परिश्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता है। बड़े परिमाण में काम करने के लिये त्याग की आवश्यकता है, और कांग्रेस इस प्रकार का काम नहीं कर सकती।

आर्य-समाज यद्यपि एक संप्रदाय के ढंग मे काम कर रहा था, परंतु इसमें जीवन और त्याग के लक्षण थे, इसमें देश-भक्ति का भाव भी पाया जाता था, इसलिये आर्य-समाज देशोद्धार में सफलता प्राप्त कर सकता था।

हमारा यह विचार बहुत ठीक था कि कांग्रेस का कार्यक्रम ठीक नहीं है। कुछ वर्षों में स्वयं कांग्रेस में ही अपने कार्य-क्रम के विरुद्ध असंतोष फैलने लगा। कांग्रेस में एक देश-भक्त दल उत्पन्न हो गया। यदि कांग्रेस में यह दल उत्पन्न न हो जाता, तो कांग्रेस इस समय तक अपनी स्वाभाविक मृत्यु मर चुकी होती। नेताओं में प्रायः यह रोग पाया जाता है कि जब वे किसी काम को करने का साहस नही कर सकते, तो अपने चेले-चाटियों को भी यही उपदेश देते हैं कि 'शनैः-शनैः चलो, एक दिन हम स्वय अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर लेंगे'। वे यह बात भूल जाते हैं कि शनैः-शनैः चलने से मार्ग कभी पूरा नहीं होता।

देश-भक्त दल ने स्वदेशी तथा असहयोग को अपने काम का पूरा करने का साधन बनाया; परंतु उनमें उतावली बढ़ गई। वे कहने लगे, हमें एक-दो वर्ष में ही अपने काम में सफलता क्यों न मिले। देश-भर में बहुत-से नवयुवक बहुत जोशीले थे। उन्होंने देश में गुप्त समितियाँ बनाकर अराजकता फैलाने की चेष्टा करनी चाही। दोनों दलों के एक ही समय में उत्पन्न होने से दोनों दलों को एक ही मान लिया गया। सरकार ने अराजक दल को कुचलने की चेष्टा की, इसके साथ ही देश-भक्त दल भी दब गया। अराजक गुप्त समितियों से हमें एक शिक्षा मिलती है। नवयुवक जोश में आकर एक काम करने लगते हैं; परंतु पकड़े जाने पर उनका उत्साह टूट जाता है, वे भेद खोलकर अपने प्राण बचाने की चेष्टा करने लगते और अपने साथियों को फसा देते हैं।

आचरण का बल न रहने से न प्रकट आंदोलन और न गुप्त समिति का काम हो सकता है।

लोकमान्य तिलक के कारागार से मुक्त हो जाने और महात्मा गांधी के भारत लौट आने पर देश-भक्त दल ने फिर ज़ोर पकड़ना शुरू किया। महात्मा गांधी के कार्यक्रम में असहयोग अवश्य एक वस्तु थी, जिससे जाति में आचरण का बल आ सकता है। योरप के युद्ध के समय कष्ट में फंस जाने के कारण अँगरेज़ों में थोड़ी उदारता आ गई, और उन्होंने भारत में राजनीतिक सुधार करने का प्रण किया। युद्ध के पश्चात् सुधार तो हुए, परंतु साथ ही सुधार का दम घोटने के लिये रौलेट क़ानून (Rollet Act) भी पास कर दिया गया। इससे देश में वह भारी आंदोलन आरंभ हुआ। इस आंदोलन में महात्मा गांधी ने भाग लेकर जहाँ अपने सत्याग्रह के सिद्धांत को सर्व-प्रिय बनाया, वहाँ उन्होंने असहयोग भी किया। असहयोग का इतिहास किसी से छिपा नहीं। असहयोग की असफलता का कारण मेरे विचार में हमारे चरित्र की न्यूनता ही है।

पंजाब में अकालियों ने अपने प्राचीन इतिहास से उत्साहित होकर और सत्याग्रह के महत्त्व को समझकर इसे अपना लिया। अकालियों ने कितने ही समय तक सरकार के साथ सफलतापूर्वक युद्ध किया है। यह सब देखकर हममें किसे शंका हो सकती है कि यदि देश के सभी भागों में अकालियों के समान चरित्र-बल होता, और देश के सब भागों में सत्याग्रह का युद्ध जारी किया जाता, तो सरकार को न दब जाना पड़ता? संसार में जब किन्हीं दो शक्तियों में युद्ध होता है, तो विजय-लक्ष्मी उसी शक्ति को जयमाल पहनाती है, जो अधिक देर तक संग्राम में डट सकती है। पिछले योरप के महायुद्ध में जर्मनी बड़ी वीरता से लड़ा; उसने विज्ञान के अद्भुत चमत्कार दिखलाए और पहले चार वर्षों में अनेक बार विजय प्राप्त की; परंतु अंतिम विजय

इँगलैंड की ही हुई। कारण, इँगलैंड अधिक देर तक धैर्य धारण कर सका। राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवालों को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सफलता प्राप्त करने के लिये चरित्र में धैर्य का होना नितांत आवश्यक है। केवल वही आंदोलन सफल हो सकता है, जो धैर्य से विरोधी शक्तियों का मुकाबला कर सके।

यह चरित्र-बल कैसे उत्पन्न हो सकता है? ढोंग और चरित्र का परस्पर विरोध है। जलसों और जलूसों से चरित्र नहीं उत्पन्न हो सकता। आर्य-समाज को रुपए के लोभ ने और उसके एकत्र करने के लिये जलसों ने खा लिया। सत्याग्रह का आंदोलन भी जलसों पर बलिदान हो गया। आप इतिहास को देख जाइए, हालैंड, इँगलैंड, इटली इत्यादि सभी देशों ने स्वतंत्रता बलिदान से ही प्राप्त की है। बलिदान का भाव बलिदान के उदाहरण से ही उत्पन्न होता है। सिखों में चरित्र-बल क्यों है? इसलिये कि उनके बलिदान के इतिहास की स्मृति अभी नई है। उन्हें प्रति दिन उसका स्मरण कराया जाता है। ये कथाएँ उनके जीवन का अंग बन गई हैं। हमारा इतिहास बहुत पुराना हो गया है। उससे हमारे हृदय में कोई उत्साह नहीं उत्पन्न होता। हम लोगों में चरित्र-बल उत्पन्न करने के लिये 'बलिदान' की आवश्यकता है। जब हम थोड़ा-सा काम करते हैं, और उसकी डौंडी समाचारपत्रों तथा सभाओं में पीट दी जाती है, तो उसका प्रभाव मिट जाता है, वह भाप बनकर आकाश में उड़ जाता है। इस प्रकार चरित्र-बल नहीं उत्पन्न हो सकता। चरित्र-बल उत्पन्न करने के लिये आवश्यकता है कि हम चुपचाप हिंदू-संगठन के काम के लिये बलिदान करें। यदि किसी नवयुवक में उत्साह है, तो वह मेरे पास आवे, मैं उसे काम करने का ढंग बताऊँगा।

वैयक्तिक और सामाजिक जीवन

स्वार्थ ही मनुष्य-जीवन का आधार है। मनुष्य का स्वार्थ यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि यदि उससे कहा जाय कि वह संसार को दो समान भागों में विभक्त करे, तो वह एक ओर स्वयं अपने व्यक्तित्व को रक्खेगा, और तुला के दूसरे पलड़े में शेष सारे संसार को।

आचार्य और उपदेशक जनता को निस्स्वार्थ होने का उपदेश देते रहते हैं; परंतु उसका प्रभाव बहुत कम होता है। जनता बलिदान करनेवालों की कथाएँ सुनती है, उनकी प्रशंसा करती है, चकित होती है; परंतु अपने स्वार्थ को नहीं छोड़ सकती। इसे छोड़ दे, तो जाय कहाँ? नवयुवक स्वार्थ के विचार से ही निरंतर परिश्रम करता है। वह पढ़ता जाता है। उसे आशा है, वह कोई ऊँचा पद प्राप्त करेगा। वह मकान बनावेगा, उसका विवाह होगा, संतान होगी, उनकी शिक्षा और आराम का प्रबंध होगा। एक आशा उसे गधे के समान हाँके लिए जा रही है। यदि यह स्वार्थ का भाव उसके मन से निकल जाय, तो फिर वह नहीं जानता कि वह क्या करे?

उपनिषदों ने इस सत्य की बहुत सुंदर विवेचना की है। उपनिषद्-कार कहते हैं कि संसार में सब कुछ 'आत्मा' के लिये है। मैं अपने पुत्र से इसलिये प्रेम नहीं करता कि वह 'पुत्र' है, परंतु इसलिये कि वह 'मेरा' पुत्र है। मैं स्त्री को इसीलिये प्यार करता हूँ कि वह 'मेरी' है। एक मकान में आग लग जाती है। मुझे कुछ चिंता नहीं। परंतु 'मेरे' मकान में आग लग जाती है, तो मेरा हृदय तड़पने लगता है। यह संपूर्ण संसार 'मेरे' के चारों ओर ही घूमता है। वेदांती इस 'मैं' को मिटा देना चाहते हैं; परंतु यह 'मैं' नहीं मिटती, बढ़ती ही

जाती है। कवि और दार्शनिक भी कहते हैं—यह 'स्वार्थ' बुरी वस्तु है, इसे त्याग दो। लोग सुनकर दूसरे कान से निकाल देते और अपने काम में लग जाते हैं।

आप कहेंगे, फरहाद के समान प्रेमी लोग भी इसी संसार में हुए हैं, जिन्होंने अपने प्रियतम के लिये संसार के सब दुःख और कष्ट सिर पर उठाए, और जब इस जीवन में उसे न पा सके, तो उन्होंने यह कहकर अपने सिर पर कुल्हाड़ा मारकर प्राण दे दिए कि अगले जन्म में जा मिलेंगे। ऐसे उदाहरणों को देखकर तो एक बार हृदय स्तब्ध हो जाता है।

इससे बढ़कर निस्स्वार्थ और क्या होगा। प्रेम में मतवाला अपने प्रियतम के लिये क्या नहीं कर देता? परंतु उपनिषद् का एक वाक्य याद आता है, तो सारा विस्मय दूर हो जाता है। उपनिषद् कहता है, प्रेमी अपने प्रियतम को इसलिये प्यार करता है कि वह उसके शरीर में अपनी आत्मा को देख पाता और उससे मिलकर अपने हृदय को संतुष्ट करता है। तुलसीदासजी का उदाहरण हमारे सम्मुख है। उनकी प्रियतमा ने कहा था, कैसा अच्छा होता, यदि तुम इतना प्रेम भगवान् से कर सकते! भगवान् से प्रेम करना तो 'मैं' को मिटाना है। प्रेम मिलन और वस्तु है, और भगवत्-प्रेम और चीज़ है। कवि ने दोनों में भेद बताया है। कवि कहता है, न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम।

मज़हब के दो अंग हैं, एक तो मनुष्य को ऊँचे और सूक्ष्म स्वार्थ की ओर ले जाता है, और दूसरा उपदेश करता है, चोरी मत करो, सच बोलो, किसी को दुःख न दो, जीवन को पवित्र बनाओ, मित्र और शत्रु से एक व्यवहार करो, प्रलोभनों से बचो, मुक्ति प्राप्त करने का उपाय करो।

हमारे सामाजिक जीवन पर इन उपदेशों का थोड़ा-बहुत प्रभाव

भी पड़ता है। यहाँ तक कि इनके नितांत अभाव में हमारा सामाजिक जीवन रह ही नहीं सकता। इन उपदेशों के अनुसार आचरण करने से हमारा व्यक्तित्व ऊँचा उठ सकता है, और इसके अभाव में हमारा जीवन नीचे गिरता जाता है।

धर्म के दूसरे अंग पर हमारा सामाजिक संगठन निर्भर है। यह कहना कठिन है कि इन सिद्धांतों में सचाई का कितना अंश है। परंतु यों कहा जा सकता है कि इनकी सत्यता और असत्यता से हमारा कोई संबंध नहीं। इस अंग पर ही सामाजिक संगठन में दृढ़ता का होना निर्भर रहता है। इस सिद्धांत को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। कल्पना कीजिए, दो निकटस्थ देशों में से एक में भिन्न-भिन्न वंशों का पृथक्-पृथक् शासन है, और दूसरे देश में सब वंश एक व्यक्ति के अधीन होकर एकतंत्र राज्य स्थापित किए हैं। इस देश में अनेकता दूर होकर सब लोग एकता के सूत्र में बँध उस व्यक्ति के आदेशानुसार मरने-मारने के लिये तत्पर रहते हैं। इस देश में राजभक्ति की सुदृढ़ शृंखला के कारण सामाजिक बंधन दृढ़ है। जब इन दोनों जातियों या देशों में परस्पर युद्ध होता है, तो दूसरा देश अधिक सुसंगति होने से पहले पर विजय प्राप्त कर लेगा। पहला देश दूसरे देश के अधीन हो जायगा, उसका जीवन संकट में पड़ जायगा। दूसरा देश और भी अधिक बलवान् बन जायगा।

सिद्धांत की दृष्टि से यह कहना कठिन है कि एक शासक के प्रति स्वामिभक्ति और उसकी आज्ञा का पालन अच्छा या बुरा है। परतु हमारे दृष्टांत से यह स्पष्ट हो गया कि यह गुण एक राष्ट्र या देश को दूसरे देश से अधिक बलवान् बना दे सकता है। ठीक यही अवस्था धर्म के दूसरे अंग की है। हम देखते हैं, भिन्न-भिन्न मतों में व्यक्ति-विशेष या पुस्तक-विशेष पर दृढ़ अंधविश्वास होता है।

इस विश्वास के युक्ति-युक्त अथवा अयुक्त होने से धर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह धार्मिक विश्वास जितना ही अधिक दृढ होगा, उस समाज का सामाजिक बंधन भी उतना ही दृढ होगा। इसलाम की दृढता उसके धार्मिक विश्वास में है। सिखों में विश्वास की दृढता मुसलमानों से भी बढकर है, इसलिये उनका सामाजिक बंधन और भी सुसंगठित है। यद्यपि यह श्रद्धा और भक्ति धर्म का केवल एक गुण है, परंतु इसमें समाज को नियंत्रित करने का गुण मज़हब या धर्म के शेष सब गुणों से अधिक है। हिंदुओं में इस गुण का अभाव ही निर्बलता का कारण है। हम सब इसका अनुभव करते हैं, और प्रायः कहा करते हैं कि हिंदुओं की कोई सांझी धर्म-पुस्तक या आराध्य देव न होने से उनमें संगठन नहीं हो सकता। यद्यपि इस बात की सत्यता में संदेह नहीं, परंतु हमें इस व्याधि का मूल ढूँढ निकालना चाहिए। मुझे इसके दो कारण दीखते हैं। प्रथम तो यह कि प्राचीन काल में हिंदू-दर्शन-शास्त्र के बहुत अधिक उन्नति कर जाने से हिंदुओं के मस्तिष्क उन्नत और स्वतंत्र हो गए हैं। इनको किसी एक की मज़हब की शृंखला में बाँध लेना कठिन है। इन्हें एक धार्मिक शृंखला में बाँधने का यत्न करने का परिणाम यह होगा कि इनमें एक और संप्रदाय उठ खड़ा होगा। उदाहरण के लिये गुरुओं का आंदोलन हमारे सम्मुख है। दूसरा उदाहरण आर्य-समाज उपस्थित कर रहा है। मैं यह मानता हूँ कि समाज का उद्देश्य एक नवीन पंथ या संप्रदाय खड़ा कर देना नहीं था, उलटे इसके समाज का अभिप्राय हिंदू-जाति की निर्बलताओं को दूर कर उसे एक शृंखला में बाँधना था। लेकिन यह उद्देश पूरा न हो सका। इसका उत्तरदायित्व कुछ आर्य-समाज के संचालकों के सिर पर है, और कुछ हिंदू-जाति के ऊपर। आज एक नया खेल बन रहा है। हम यह नहीं देखना चाहते कि संसार किधर जा रहा है, और हम किन बातों में फसे हुए हैं। हमारी सना-

तनधर्म-सभाएँ समझती हैं कि आर्य-समाज ही हिंदू-जाति का सबसे प्रबल शत्रु है, और सबसे पहले इसी का नाश करना आवश्यक है। कौन कह सकता है, हिंदू लोग अपने शत्रुओं और मित्रों को पहचानना कब सीखेंगे। मैं भली भाँति समझता हूँ कि यह सब कुछ लिखकर मैं दोनों दलों को नाराज़ कर रहा हूँ। कोई अच्छा कहे या बुरा, अपने हृदय की व्यथा मैं ही जानता हूँ।

दूसरा कारण यह है कि इस देश ने सामाजिक जीवन की आवश्यकता का कभी अनुभव ही नहीं किया। वैयक्तिक गुणों पर हम लोग इतने रीझ गए हैं कि सामाजिक जीवन का हमें ध्यान ही नहीं आता। हिंदू अपनी-अपनी वैयक्तिक उन्नति में ही इतने व्यस्त हैं कि इन्हें कभी इसका ध्यान भी नहीं आता कि सामाजिक जीवन की भी कोई आवश्यकता है या नहीं। इन्हें यह भूल जाता है कि सामाजिक जीवन के अभाव में उनके वैयक्तिक गुण उन्हें बचा नहीं सकेंगे। भिन्नता इनकी प्रकृति में ही समा गई है। भिन्न-भिन्न दल बाँधकर खूब उत्साह से काम करेंगे। अपने भाइयों से झगड़ना हो, तो सब कुछ करने के लिये तैयार हैं; केवल परस्पर मिलकर ही ये कुछ नहीं कर सकते। यह निर्बलता का मूल-कारण दूर होता दिखाई नहीं देता।

इसका यही एक उपाय है कि हम हिंदुओं के हृदयों में संगठन का भाव दृढ करें। जितना ही यह भाव दृढ होगा, भिन्नता का भाव उतना ही दूर होगा। संगठन का भाव हममें सामाजिक जीवन डाल सकता है।

हिंदुओं को सावधान हो जाना चाहिए। उन्हें ऐसे किसी आंदोलन में भाग न लेना चाहिए, जो हिंदू संगठन के विरुद्ध हो। उनकी जाति और प्राचीन सभ्यता की रक्षा का केवल एक ही मार्ग है, और वह यही कि जाति को संगठित करने के लिये अपने व्यक्तित्व को निछावर कर दें।

सोचिए

लिखूँ तो क्या लिखूँ ? मनुष्य वही लिखता है, जो कुछ उसके हृदय में भरा रहता है। अपने हृदय की अवस्था क्या बताऊँ ? मेरे हृदय में दुःख और निराशा भरी हुई है । कभी विचार उठता है, निराश होना पाप है। हृदय को समझाता हूँ; परंतु जब संसार की अवस्था देखता हूँ, तो दिल टूट जाता है, और आशा कोसों दूर चली जाती है। यह निराशा क्यों ? इसलिये नहीं कि हमारे यहाँ कुछ बच नहीं रहा। अभी तो बहुत कुछ बचा हुआ है, और वह हमको भी बचा सकता है । यद्यपि हमारी जाति और धर्म भयंकर भँवर में फँसे हुए हैं, परतु इसमें अभी बचने की पर्याप्त शक्ति है। दुःख है तो यह कि हम अभी तक अपने सकट को समझ नहीं सके । जो कोई उठता है, मनमाना उपाय तजवीज़ कर देता है, और अपनी प्रशसा का राग अलापता हुआ सबको अपने पीछे चलाने की चेष्टा करता है । उसे समझाओ, वह सुनेगा ही नहीं। उसके दिमाग़ में तो अपने विचारों का और अपनी पार्टी का ख़ब्त समाया हुआ है। सारी दुनिया मान जाय, परंतु वह नहीं मानेगा। उसे अपने विचार इतने महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं कि उनके आगे सारी जाति के कष्ट कोई अस्तित्व नहीं रखते। हम संसार को दिखलाना चाहते हैं कि हम बड़ा काम कर रहे हैं, और हमारे काम में ही ससार की मुक्ति है। हम इसी चिंता में हैं कि संसार को अपनी बात की सचाई पर विश्वास दिला दें। इसी उद्देश से हम सब कुछ करते हैं। हमारा विश्वास है कि हमारे विचारों से ही संसार का कल्याण हो सकेगा। मुझे अपने सब कामों में एक छल दिखाई देता

है, जब तक हमारी जाति और देश के लोग इस छल को समझ न लेंगे, हमारा उद्धार नहीं हो सकेगा।

आओ, हम देखें यह छल किस प्रकार हमारी जड़ों को खोखला कर रहा है। हम प्रायः ब्राह्मणों को पोप कहते हैं, और उन पर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने पहले जाति को ठगना आरंभ किया, और फिर सभी लोग गिर गए। ब्राह्मण सर्वोच्च होते हुए भी ठग बन गए, इसका कारण यह था कि ब्राह्मणों ने धर्म के कठिन नियमों का पालन छोड़कर अपने नाम के सम्मान से लाभ उठाना चाहा। परंतु यह ठगी केवल ब्राह्मणों तक ही परिमित न रही।

घटनाओं को देखने से पता चलता है, यह ठगी सारी जाति में ही घर कर गई थी। सभी वर्ण अपने कर्तव्य को छोड़ केवल दिखावे में ही फस गए थे। क्या हमारे क्षत्रिय, क्या संन्यासी और बैरागी, सब नाममात्र को ही रह गए थे। कर्तव्यच्युत होकर भी वे लोग अपने को बड़ा बताने की चेष्टा करते थे। मंदिरों के पुजारियों और मठों के महंतों ने जनता को ठगना ही कर्तव्य बना लिया था। अपने पुराने दोषों का वर्णन करते समय हम यह भूल जाते हैं कि अब भी हम में वे दोष विद्यमान हैं। शोक यह है कि हमारे रोग अभी तक हमारा गला उसी प्रकार दबाए बैठे हैं। भेद केवल इतना है कि अब ठगी का ढंग बदल गया है। उदाहरण के लिये गो-रक्षा का प्रश्न ले लीजिए। हिंदुओं के हृदय में अभी तक गउओं के लिये श्रद्धा बनी है। आज गो-रक्षा के नाम पर जनता को ठगने के अनेक ढंग निकाले जाते हैं। क्या इन सब उपायों से गो-रक्षा हो सकती है? मुझे तो इसमें बड़ा संदेह है। हिंदुओं के हृदयों में अनाथों और विधवाओं के लिये करुणा है। अनेक धूर्त मनुष्य अनाथों और विधवाओं के नाम पर जाति को ठगने के उपाय सोच निकालते हैं। लोग विद्या-प्रचार को धर्म का काम समझते हैं। इसलिये बिना इस विचार के कि वर्तमान

शिक्षा देश को उन्नति की ओर ले जा रही है या अवनति की ओर, जाति के लाखों रुपए विद्या-प्रचार के नाम पर उड़ा दिए जाते हैं। हमसे कहा जाता है, नित्य सैकड़ों हिंदू-स्त्री-पुरुष विधर्मी हो रहे हैं। ईसाइयों ने करोड़ों रुपए ख़र्च करके अपना जाल बिछाया है। मुसलमानों में प्रत्येक व्यक्ति अवैतनिक प्रचारक है। जाति की इस डूबती नैया को बचाने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। हम पूछते हैं, क्या आपके यह स्कूल और कॉलेज हिंदू-धर्म की रक्षा कर लेंगे? क्या कन्याएँ स्कूलों में पढ़कर जाति को बचा लेंगी? मुझे तो नेताओं की अवस्था देखकर शोक होता है, जो जाति के दुःख को देखकर उस ओर से आँखें बंद कर लेते हैं, और अपने वहमों को पूरा करने के लिये जाति की गाढ़ी कमाई को नष्ट कर रहे हैं। भूल कहाँ है? इस भूल की जड़ हमारे उत्सवों और तमाशों में है। आज एक समाज का जलसा है, कल एक सभा का उत्सव है, परसों एक स्कूल का है, चौथे दिन एक पाठशाला का है, अगले दिन एक आश्रम का है। बहुत-से व्याख्यान हुए, भजन हुए; बहुत-से आदमी आए, ख़ूब समारोह हुआ, और सफलता भी हो गई। काम पूरा हो गया। मेरी जिह्वा में शक्ति नहीं कि अधिक ज़ोर से कह सकूँ। ये सब जलसे तमाशे हैं। इनसे कुछ नहीं बनता; बल्कि ये वास्तविक काम को भी कुचल देते हैं। जब तक हम इसे काम समझते रहेंगे, सीधे मार्ग पर न आ सकेंगे। इस बड़े भारी अपराध का उत्तरदायित्व आर्य-समाज पर ही है। शेष सब सभा-सोसाइटियों ने इस विषय में समाज की ही नक़ल की है। अब हिंदू-संगठन की बारी आई है। लोग इसके लिये क्या करना चाहते हैं? क्या वही जलसे और सम्मेलन, जिनसे बहुत-सा कोलाहल मच जाय और लोग कहें, हाँ, बहुत काम हो गया?

सम्मेलन या Conference की आवश्यकता को मैं स्वीकार

करता हूँ; परंतु यह सम्मेलन गंभीर विचार के मनुष्यों का सामयिक प्रश्नो पर गभीरतापूर्वक विचार करने के लिये होना चाहिए। यदि कानफ्रेंस को भी तमाशा बना दिया जायगा, तो उससे कोई निश्चित कार्य-क्रम न बनकर केवल कुछ व्यक्तियों मे पारस्परिक उतरा-चढ़ी और वैमनस्य हो जायगा। सम्मेलन और उत्सव को तो ऐसे स्थान पर भी सफल बनाया जा सकता है, जहाँ एक भी व्यक्ति काम करने-वाला नही। हम कब समझेंगे कि हमारा उद्धार काम करने से ही होगा, तमाशों से नहीं।

कुछ लोग कहते हैं, यदि हम जलसा करना बद कर दें, तो हमारी समाज की समाप्ति ही हो जायगी। मैं कहता हूँ, यदि यही ठीक है, तो जितनी जल्दी ऐसा समाज समाप्त हो जाय, उतना ही अच्छा। जिस समाज का जीवन जलसो पर ही आश्रित है, वह बहुत देर तक जीवित नही रह सकता। आप पूछेंगे, यदि हम जलसे बंद कर दें, तो फिर करें क्या? मैं कहता हूँ, ऐसा करके फिर सोचिए, आप-में काम करने योग्य शक्ति है या नहीं।

जलसे करने के साथ ही बड़ा काम रुपए एकत्र करना है। हम अपनी सफलता का अनुमान रुपयों की संख्या से करते हैं। धन का अत्यधिक मोह हमारा पुराना रोग है। उसी ने अब यह नया रूप धारण कर लिया है। हमने रुपए एकत्र करना ही एक-मात्र काम समझ लिया है। जो उठता है, वही एक डेपुटेशन बनाकर रुपए माँगने चल देता है। निर्लज्ज बनकर वह लोगों के दरवाज़े पर डट जाता है। इमसे दान की श्रद्धा ही जाती रही है। अब दान तो कोई देता नहीं। माँगनेवाले अपनी चतुरता से रुपए ऐंठते हैं, और देनेवाले अपना लाभ देखकर देते हैं।

इस ढंग से माँग-माँगकर हम चाहे करोड़ों रुपए इकट्ठे कर लें हमारा मठ कितना ही बड़ा होकर सफल दिखलाई दे, परंतु हमारा

सारा प्रयत्न भी मिलकर जाति के हृयय से दान की श्रद्धा मिटा देने के अपराध का प्रायश्चित्त नहीं कर सकता। डेपुटेशन बनाकर माँगनेवाले और उन्हें सहायता देनेवाले पापी हैं। ये सब मिलकर धर्म का मार्ग बद कर रहे हैं।

'माया को माया मिले कर-कर लंबे हाथ।' जिन मठों के पास रुपए हैं, उनका लिहाज़ भी है, उन्हें और रुपए भी मिल जाते हैं; परंतु जिस काम की देश को अत्यत आवश्यकता है, उसकी कुछ चिंता नहीं।

रुपए एकत्र करने के लिये इस देश में व्याख्यानों की प्रथा चल गई है। व्याख्यान क्या हुआ, एक मख़ौल हो गया है। व्याख्यान देनेवाले को कुछ कहना हो या न कहना हो, लोग व्याख्यान सुनने पर ज़ोर देते हैं। हमारे देश में बहुत पुराने समय से कथा कहने की प्रथा है। यह भी सब जानते हैं कि लोग कथा किस तरह सुनते हैं। श्रोता कथा को वहीं झाड़कर घर लौटते हैं। स्त्रियाँ तो कथा सुनते समय अपना काम भी करती रहती हैं। अब लोग स्कूलों में पढ़ गए हैं, इसलिये बैठकर कथा सुनना तो अच्छा नहीं लगता। इनके कन-रस को पूरा करने के लिये लेक्चरार आवें और लेक्चर दें। एक-एक लेक्चर के लिये कितने ही रुपए रेल के किराए में व्यय हो जाते हैं, और फिर प्रभाव भी तो कुछ नहीं होता। मेरी सम्मति में लेक्चर जितने थोड़े हों, उतना अच्छा; और बंद हो जायँ, तो उससे भी अच्छा। मेरा विचार है, कुछ समय के लिये हमें अपने पुराने ढंग को बिलकुल बदल देना चाहिए। हमें शांत होकर सोचना चाहिए, क्या हम अपनी उन्नति का कोई दूसरा उपाय कर सकते हैं या नहीं? दिखावा छोड़कर शांति से काम करना उन्नति के मार्ग में हमारा पहला क़दम होगा। कम-से-कम मुझे तो आप ऐसा करने की आज्ञा दे दीजिए।

प्रभु, हमें सत्य-मार्ग दिखाओ

हिंदुओं के लिये वेद ब्रह्म है। यही उनकी सबसे पूज्य पुस्तक और ईश्वरीय ज्ञान है। वेद का एक मंत्र गुरु-मंत्र कहलाता है, और वह गायत्री-मंत्र है। यह मंत्र गुरु-मंत्र इसलिये कहाता है कि वह मनुष्य-मात्र को सत्य-मार्ग दिखाता है। इस मत्र का जप करना प्रत्येक हिंदू का प्रति दिन का एक आवश्यक और पवित्र कर्म समझा जाता है। बचपन में ही यह मंत्र हमारे कान में फूँका जाता है, और हमें विश्वास दिलाया जाता है कि किसी भी कष्ट और आपत्ति के समय इस मंत्र का जप करने से हम दुःख से उद्धार पा जायँगे। इस मंत्र का अभिप्राय है—"हे प्रभु, हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर लाओ।"

यह क्या? हमारी बुद्धि का हमारे दुःखों से क्या संबंध? परंतु यही हमारे दुःखों का एक रहस्य है। मनुष्य के सब दुःख उसकी बुद्धि के कुमार्ग पर चलने से ही उत्पन्न होते हैं। कल्पना कीजिए, एक मनुष्य को उत्तर की ओर एक स्थान पर जाना है, वह भूल से दक्षिण की ओर चल पड़ता है। वह जितना ही दूर जाता है, उतना ही अपने दुःख को बढ़ाता है। जितने वेग से वह दौड़ता है, वह अपने इष्ट स्थान से उतना ही दूर होता जाता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन में एक क़दम भूलकर उलटे मार्ग पर रख देता है, और उसका सारा जन्म दुःख में डूब जाता है।

इसी प्रकार सभा-समाज भी भूलकर उलटे मार्ग पर पड़ भूल-भुलैयाँ में फसते चले जाते हैं। जब आगे से मार्ग बंद हो जाता है, तब इधर-उधर देखकर चकराते और धक्के खाते हैं। सोचते हैं, क्या करें।

मार्ग दिखलानेवाला गुरु, नेता या पथ-दर्शक होता है । प्रायः ऐसा होता है कि नेता इष्ट स्थान का उचित मार्ग दिखा देता है, परंतु परिस्थिति इतनी विकट होती है कि जनता अपनी बुद्धि को काम में लाकर फिर पथ-भ्रष्ट हो जाती, और अपने नेता के काम को बिगाड देती है ।

दुर्भाग्य से हमारा देश ऐसी अवस्था में फस गया है कि इसकी समस्या का हल बहुत कठिन हो गया है । इस समस्या को सुलझाने के प्रयत्न में अनेक भूलें होने की संभावना है । बहुत सीधे होने के कारण हमारा भूल जाना और भी सरल है । अच्छा नेता मिलने पर भी हम ठीक मार्ग पर नहीं चल सकते, और दुःखों का ग्रास बनते हैं । हमारी समस्या की उलझन का कारण यह है कि हमारे देश के आरंभिक निवासी हिंदू हैं । हिंदू-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना हिंदू-नेताओं का मुख्य कर्तव्य है । हमारे पुराने नेता ब्राह्मण थे । महात्मा बुद्ध ने इस जाति के सामने नया आदर्श उपस्थित कर इसकी संस्कृति को ही बदल दिया । एक तरह से उन्होंने इस जाति को नया ही जन्म दे दिया । बौद्ध संस्कृति अच्छी थी या बुरी, यह दूसरा प्रश्न है; परंतु हम इतना तो निस्संदेह कह सकते हैं कि बौद्ध-धर्म ने हमारी जाति को जीवन-संग्राम के अयोग्य बना दिया । समर-क्षेत्र में लाखों का मुख मोड़ देनेवाले क्षत्रिय बौद्ध-धर्म के प्रभाव से तिनका तक तोड़ने में असमर्थ हो गए । यद्यपि ब्राह्मणों ने प्रयत्न करके इस देश में प्राचीन सभ्यता का नए सिरे से प्रचार किया, परंतु वे बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म के प्रभाव को सर्वथा दूर न कर सके ।

हिंदुओं को मुसलमानों से भिड़ना पड़ा । इसलाम में इसके संचालक ने वे सब विशेषताएँ भर दी थीं, जो जीवन-संग्राम के लिये अत्यंत उपयोगी हैं । इसलाम अरबी सभ्यता के अच्छे-बुरे गुण साथ लेता

आया है। इसलाम के अन्य प्रभावों को छोड़कर भी इतना तो स्पष्ट है कि हमारी जाति का एक बड़ा भाग इसके प्रभाव से अपनी सभ्यता का शत्रु बनकर इसके विरुद्ध खड़ा हो गया है। एक विरोधी शक्ति के निरंतर साथ रहने से हिंदुओं की अवस्था शोचनीय हो गई है। इतना ही होता, तो भी अधिक चिंता न थी। जातियों में सदा परस्पर संग्राम होते ही आए हैं, और उनसे मुक्ति प्राप्त करने के भी कई ढंग हैं। परंतु इस समय एक अत्यंत उन्नत और समृद्ध जाति पश्चिम से आकर इस देश में बस गई है। इस जाति ने सभ्यता के सभी उन्नत उपायों से संपन्न होकर हमारी जाति की संस्कृति को दबाकर अप्रतिभ कर दिया है।

इस विकट समस्या का सुलझाना कठिन काम है। बंगाल के प्रसिद्ध नेता राजा राममोहन राय और बाबू केशवचंद्र सेन ने अपना मार्ग बता दिया। यह दूसरा प्रश्न है कि वह मार्ग ठीक है या नहीं।

स्वामी दयानंद ने भी एक मार्ग दिखाया, और कांग्रेस ने एक राज-नीतिक आंदोलन आरंभ किया। नहीं कह सकते, ये सब मार्ग हमें निर्दिष्ट स्थान पर ले जायँगे या नहीं। परंतु यदि हमारा मार्ग ग़लत हो, तो इसमें संदेह नहीं कि हमारा संपूर्ण परिश्रम और प्रयत्न व्यर्थ जायगा, और हम उलटे दुःख-सागर में जा पड़ेंगे। हमारे सब कष्टों और दुखों के लिये हमारे नेता ही उत्तर-दाता होंगे; क्योंकि हम उन्हीं के निर्दिष्ट मार्ग पर चल रहे हैं। हमने कुछ चुने हुए व्यक्तियों को नेतृत्व सौंप दिया है, और आशा करते हैं कि वे हमें ठीक स्थान पर पहुँचा देंगे। परंतु यदि हमारे नेता स्वयं ही उलटे मार्ग पर चलने लगें, तो वही बात होगी कि "बाम्हन आप भी मरे और जजमान भी डुबाए।"

यदि हम ठीक मार्ग पर चलें, तो हमें सफलता का मुख देखने की आशा भी हो सकती है, और हम सफलता की ओर एक-दो क़दम

आगे भी बढ़ सकते हैं। बहुत-से ऐसे भी काम होते हैं, जो प्रकट में उन्नति और सफलता की ओर जाते देख पड़ने पर भी वास्तव में सैनिक क़वायद (Military drill) के 'मार्क-टाइम (March-time) की भाँति होते हैं। मार्क-टाइम करने से सेना आगे नहीं बढ़ सकती, केवल उसके पैर ही मिल सकते हैं। इस समय हमारे नेता कोई सीधा मार्ग नहीं देख पाते या देखना नहीं चाहते ; क्योंकि ऐसा करने से उनकी अन्य इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं। इसलिये वे निरर्थक कामों में ही अपना समय नष्ट कर रहे हैं।

हमारे देश के प्रमुख नेता महात्मा गांधी हैं। उनका त्याग अद्वितीय है, उनकी विद्वत्ता में संदेह नहीं, उनकी वाणी में जादू है। परंतु जब वह अपनी हिंदू-मुसलिम एकता के लिये पंजाब का बलिदान करने को कहते हैं, तो मुझे उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता में संदेह हो जाता है। महात्माजी यह भूल जाते हैं कि पंजाब भारत का मुख्य द्वार है। समय-समय पर सभी राजसत्ताएँ पजाब से ही भारत के मैदानों में आईं। भारत की राजधानी दिल्ली सदा ही पंजाब के शासन के हाथ रही है।

पंजाब का इतिहास विशेष महत्त्व की वस्तु है। जब पंजाब एक बार ग़ज़नी के अधीन हो गया, तो भारत के किसी प्रांत के लिये भी विदेशी शत्रु का सामना करना असंभव हो गया। सभी आक्रमण-कारी सदा पंजाब को ही हथियाने के प्रयत्न में रहते आए हैं। मरहठों ने देहली में राज्य स्थापित किया, परंतु पजाब को न अपना सके। उनका शासन स्थिर न रह सका। दिल्ली में अँगरेज़ी-राज्य की सफ-लता का भी कारण यही था कि महाराजा रणजीतसिंह ने अँगरेज़ों को पंजाब की ओर से निश्चिंत कर दिया था। पिछले महायुद्ध का ही उदाहरण देख लीजिए। लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के शासन को किस ओर से भय की आशंका हुई थी। यदि यह भय वास्तविक रूप धारण कर लेता और पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता होती जैसी कि मियाँ

फ़ज़लहुसैन करना चाहते हैं—तो क्या अवस्था होती? पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता सदा ही पश्चिमोत्तर से होनेवाले आक्रमणों से सहानुभूति रक्खेगी। भारत के शासन की भलाई इसी में है कि पंजाब में मुसलमानों की प्रबलता न हो सके। हमारे मियाँ साहब इस रहस्य को ख़ूब समझते हैं; परंतु महात्माजी का ध्यान इस ओर नहीं जाता। हमारी जाति के दूसरे नेता मालवीयजी हैं। यह सत्य है कि मालवीयजी ने हिंदू-संगठन में जीवन डाल दिया है; परंतु अब वह इसके लिये क्या कर रहे हैं? मुझे तो यह स्पष्ट दीखता है कि मुसलमानों ने हमारे अछूतों और विधवाओं को संगठित ढंग से हड़प जाने का प्रयत्न आरंभ किया है। प्रत्येक मुसलमान अपने मज़हब का प्रचारक है। अभी कुछ ही दिन हुए कि हमें समाचार मिला है, एक प्रतिष्ठित मुसलमान के घर दो हिंदू-विधवाएँ अपने बच्चों समेत आई हुई थीं। दूसरे दिन प्रातः-काल ही पता लगा कि उन्हें दूसरे घर में भेज दिया गया है, और ऐसी स्त्रियों को एक घर में चौबीस घंटे से अधिक नहीं रक्खा जाता। न-जाने लाहौर में ऐसी कितनी घटनाएँ प्रतिदिन होती हैं, जिनका हमें भेद भी नहीं मिलता। दो ही अवस्थाएँ हो सकती हैं। या तो आजकल ये घटनाएँ बहुत अधिक होने लग गई हैं, या हमारे चैतन्य हो जाने से हमें इनका पता लग जाता है, जो पहले नहीं लगता था। यह तो हुआ। हम मालवीयजी से पूछते हैं कि वह हिंदुओं में जीवन उत्पन्न करने के लिये क्या कर रहे हैं? वह कर ही क्या सकते हैं। उन्हें समय ही कहाँ है? उन्हें बड़ी व्यवस्थापक-सभा के लिये व्याख्यान तैयार करने के लिये समय चाहिए। इन्हीं व्याख्यानों पर हमारी जाति का भविष्य निर्भर है न? सारी आयु कौंसिलों में रहकर भी पंडितजी को इतना पता नहीं लगा कि वास्तविक काम कौंसिलों के बाहर है। कौंसिलों में बैठकर काम करनेवाले सज्जन पर्याप्त हैं।

पंजाब की अवस्था अन्य प्रांतों से भिन्न है। यहाँ काम करने की

शक्ति अन्य प्रांतों से अधिक है। पंजाब के अतिरिक्त अन्य किसी प्रांत में जनता द्वारा स्थापित स्कूल-कॉलेज आपको नहीं मिलेंगे। पंजाबियों ने समझा कि देश का उद्धार इस शिक्षा से ही होगा। न-जाने किस अभागी घड़ी में आर्य-समाज के किस नेता के हृदय में यह विचार उठा कि आर्य और हिंदू-समाज का उद्धार इस शिक्षा द्वारा हो जायगा। यह विचार पंजाब में बहुत गहरा चला गया है। यहाँ की शिक्षित जनता की आँखों पर एक पर्दा-सा पड़ गया है। न केवल आर्य और हिंदू, बल्कि सिख, मुसलमान तथा अन्य सभी संप्रदाय इस प्रयत्न में हैं कि उनके अपने सम्प्रदाय के कॉलेज और स्कूल स्थान-स्थान पर बन जायँ। पंजाब की सारी शक्ति और धन को धर्म के नाम पर अपील करके इस अविद्या के प्रचार के लिये व्यय किया जा रहा है। हमने कॉलेज बनाना ही जातीय उन्नति का एक-मात्र साधन समझ लिया है। हम इस काम के लिये सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। जहाँ भी पंजाबी असर है, यह बीमारी भी साथ है। मैं स्वयं बहुत समय तक इस बीमारी का शिकार बना रहा हूँ, और उसका प्रायश्चित्त करने के लिये राष्ट्रीय विद्यालय में समय देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे तो विस्मय होता है कि कोई यह सोचता ही नहीं कि इस शिक्षा से लाभ क्या हो रहा है? अन्य देशों में बच्चों को हाथ से काम करके अपने जीवन-निर्वाह के योग्य बनाया जाता है; परंतु हम चौदह-पंद्रह वर्ष तक बच्चों को शिक्षा देकर केवल अर्ज़ी लिखना सिखाते हैं। कोई कुछ नहीं सोचता; प्रति वर्ष हज़ारों बालक स्कूलों में पहले वर्षों की अपेक्षा अधिक संख्या में दाख़िल होते हैं। वे समझते हैं शायद स्कूल में न पढ़ने से वे स्वर्ग में प्रविष्ट न हो सकेंगे। ईश्वर जाने, पंजाबियों को किस दिन बुद्धि आवेगी। वही इनकी बुद्धियों को सन्मार्ग पर ला सकता है।

हमारी अवस्था विचित्र है। हम प्रति दिन विनाश की ओर जा रहे हैं। हमारे बालक न कोई हुनर सीखते हैं, न मज़दूरी कर सकते हैं, न उनसे खेती हो सकती है, हम प्रति दिन चंदा दे-देकर उनके लिये स्कूल खोलते जाते हैं।

हमारा कर्तव्य हिंदू-आदर्श और सभ्यता की रक्षा होना चाहिए। स्वराज्य ही इसका एक-मात्र साधन है। हिंदू-मुसलिम एकता की भी इसके लिये आवश्यकता होगी। हमें पश्चिम से कला-कौशल भी सीखना होगा। परंतु हम इनमें से किसी वस्तु के लिये चिंता नहीं करते। हमारा यह काम बहुत लंबा है, दो-चार दिनों या वर्षों में यह नहीं हो सकेगा। मुझे तो इसका अंत ही दिखाई नहीं देता। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि अपनी जाति को जीवित रखने की चेष्टा करें और इसे बलवान् बनावें। चरित्र, बल और सच्ची शिक्षा ही हमें इस आपत्ति से बचा सकती है। सफलता प्राप्त करने के लिये बलिदान की आवश्यकता होगी। हमें अपने को एक लंबे युद्ध के लिये तैयार करना होगा।

मुसलमानों के दिल में इसलामी हुकूमत क़ायम करने की उमंग है। उन्हें पंजाब की सीमा पर अफ़ग़ानी हुकूमत पैर फैलाए दीख रही है। वे उसके लिये मैदान साफ़ करना चाहते हैं। हिंदुओं के लिये इस देश की सीमा के परे कुछ नहीं; उनकी आशा भारत पर ही है। हिंदू रियासतें हैं; परंतु उनमें जागृति का कोई चिह्न नहीं। इस जागृति के बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती।

संख्या का प्रश्न

महात्मा गांधी तथा अन्य राजनीतिक नेताओं के हृदय में एक भ्रम समा गया है। वे समझते हैं कि हिंदू-मुसलिम झगड़े का कारण अधिकारों का बटवारा है। वे प्रयत्न करते हैं कि एक बार मिलकर इन अधिकारों को बाँट दिया जाय और समझौता हो जाय। महात्माजी हिंदुओं को उपदेश देते हैं कि हमें अधिकारों की चिंता न कर अपनी सारी शक्ति स्वराज्य की ओर लगाकर बलिदान करने के लिये उद्यत हो जाना चाहिए; क्योंकि देश में हिंदुओं की संख्या अधिक होने से देश की ओर हिंदुओं का ही कर्त्तव्य अधिक है। महात्मा जी एकता के लिये हिंदुओ को झुक जाने का उपदेश देते हैं। परंतु दूसरे नेता यह बात मानना नहीं चाहते। उनका विचार है कि इससे हिंदुओं को भयंकर हानि पहुँचेगी, और मुसलमान भी प्रसन्न नहीं होंगे। इसीलिये लाला लाजपतरायजी ने समझौते के लिये प्रयत्न करके भी पीछे इस विचार को छोड़ देना ही उचित समझा, और अब हिंदुओं को अपने राजनीतिक अधिकारों की रक्षा का उपदेश दे रहे हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि हमारा झगडा मुसलमानों से अधिकारों के लिये नहीं है। उसका कारण कुछ और ही है। अधिकार देना मुसलमानों के हाथ में नहीं, प्रत्युत गवर्नमेंट के हाथ में है। अधिकारों के लिये हमारा झगडा गवर्नमेंट से होना चाहिए, मुसलमानों से नहीं।

उदाहरण के लिये हमारी शिकायत मियाँ फ़ज़लहुसैन के विरुद्ध है। यहाँ हमें उनके मुसलमान होने से कोई शिकायत नहीं हो सकती। हमें उनके मुसलमान मंत्री होने से ही शिकायत है; क्योंकि वह जो

कुछ कर रहे हैं, वह इस गवर्नमेंट का अंग बनकर,कर रहे हैं, और इस गवर्नमेंट के बल पर कर रहे हैं। इस प्रकार की आपत्ति हिंदुओं को कई मुसलमान सिविल और पुलीस अफ़सरों के विरुद्ध हो सकती है, जो अपने कर्तव्य को पूरा करते समय भी अपनी धार्मिक असहिष्णुता को दूर नहीं कर सकते। यदि किसी ऐसे व्यक्ति के अन्याय के विरुद्ध हिंदू आपत्ति करते हैं, तो वह शिकायत मुसलमानों के विरुद्ध न होकर सामयिक शासन के विरुद्ध है। हमारी व्यवस्थापक सभाएँ भी अन्य सरकारी महकमों की भाँति इस गवर्नमेंट का एक भाग हैं। यह गवर्नमेंट अच्छी है या बुरी, यह दूसरा प्रश्न है। यदि हम इसे बुरा समझते हैं, तो हमें अधिकार है कि इसे ठीक करने या बदलने का प्रयत्न करें; परंतु इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि यह गवर्नमेंट हमारे देश का शासन कर रही है, और हमें इसके साथ संबंध रखना ही होगा। हमरा न्याय इसी के हाथ में है। उदाहरणतः लाहौर म्युनिसिपिल कमेटी का निर्णय पूर्णतया गवर्नमेंट के हाथ में है, इसका मुसलमानों से कोई संबंध नहीं। प्रश्न उठता है, झगड़ा राजनीतिक अधिकारों का, नहीं, तो फिर झगड़े का वास्तविक कारण क्या है? इस कारण को मुसलमान भली प्रकार समझते हैं। जिस दिन से इसलाम इस देश में आया है, उसी दिन से जो कोई व्यक्ति मुसलमान हो जाता है, वह इस कारण को समझने लगता है। हिंदू इसे न समझते हैं, न समझने की चेष्टा करते हैं। जब तक हम अनैक्य के मूल-कारण को नहीं समझेंगे, एकता होना असंभव है।

वास्तव में झगड़े का कारण संख्या का प्रश्न है। इसलाम की शिक्षा है अपने मज़हब को ख़ूब फैलाओ। यदि एक मुसलमान किसी अन्य संप्रदाय के मनुष्य को मुसलमान बना लेता है, तो उसके लिये मुक्ति का द्वार खुल जाता है। इस काम से अधिक पवित्र और पुण्यदायक काम मुसलमानों की दृष्टि में दूसरा नहीं। इसलिये प्रत्येक

मुसलमान स्वभावतः अपने धर्म का प्रचारक होता है। प्रेम से, लोभ से, डर से, बल-प्रयोग से, यहाँ तक कि अपनी कन्या देकर भी दूसरे संप्रदाय के मनुष्य को मुसलमान बनाने का प्रयत्न करना मुसलमानों की प्रकृति बन गई है। मुझे सक्खर (सिंध) के एक मुसलमान रईस के विषय में बतलाया गया है, जो वर्ष में प्रति दिन एक के हिसाब से ३६५ हिंदू-स्त्री-पुरुषों या बालकों को मुसलमान बनाए बिना भोजन करना हराम समझता है।

इन कारणों से देश में हिंदुओं और मुसलमानों की संख्या निश्चित नहीं रह सकती। हिंदू घटते और मुसलमान बढ़ते जाते हैं। संख्या के आधार पर अधिकार बाँटने पर मुसलमान इसीलिये ज़ोर देते हैं; क्योंकि उनकी संख्या प्रत्येक प्रांत में बढ़ रही है। कुछ वर्ष हुए, बंगाल में हिंदुओं की संख्या अधिक थी; परंतु अब मुसलमानो की संख्या अधिक है। कुछ समय में यह और भी बढ़ जायगी। इसी सिद्धांत को फैलाकर देखने से स्पष्ट विदित हो जायगा कि मुसलमानों की सख्या बढ़ने और हिंदुओं की घटती जाने से मुसलमानों के अधिकार शनैः-शनै बढ़ते और हिंदुओं के घटते जायँगे। और, एक दिन आवेगा कि इस देश में इसलाम का प्रभुत्व स्थापित होकर एशिया में एक प्रबल इसलामी शक्ति स्थापित हो जायगी।

मुझे इसमें क्या आपत्ति है? मुझे इससे भविष्य में मज़हबी अत्याचार और असहिष्णुता के फैल जाने की संभावना दीखती है, विचारों की स्वतंत्रता और सभ्यता की उन्नति में एक भयंकर रुकावट खड़ी दीखती है। संसार में आत्मिक उन्नति, विचार-स्वतंत्रता और सभ्यता के विकास के लिये हिंदू-संस्कृति की रक्षा परमावश्यक है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि कम-से-कम इस देश में यदि हिंदू-जाति की संख्या बढ़ नहीं सकती, तो घटे भी नहीं। हिंदू-संगठन से मेरा यही अभिप्राय है। यदि हिंदू इतनी बात समझ लें, और इसके

लिये प्रयत्न करना आरंभ कर दें, तो उनकी रक्षा हो सकती है, वर्ना उनकी वही दुर्गति होगी, जो पहले होती रही है।

मैं माल्थस का भक्त नहीं, फिर भी मनुष्य-समाज की संख्या बढ़ाने के पक्ष में नहीं हूँ। मेरे विचार में मनुष्य को उतनी ही संतान उत्पन्न करनी चाहिए, जिसका वह सुगमता से और अच्छी तरह से पालन कर सके। व्यर्थ निकम्मी संतान उत्पन्न करके समाज के भार को बढ़ाना महा पाप है। परंतु ये सब सिद्धांत उसी समाज के लिये ठीक हैं, जो प्राकृतिक अवस्था में हो। हमारे समाज की अवस्था इतनी बिगड़ चुकी है कि कोई भी साधारण सामाजिक नियम हमारी अवस्था के सर्वथा अनुकूल नहीं हो सकता। इस देश के दो अंगों में से एक का प्रयत्न यह है कि अपनी संख्या बढ़ाकर वह दूसरे अंग को देश से निकालकर बाहर कर दे। इसलिये यहाँ पर काम करने-वाले सभी सिद्धांत विचित्र होने चाहिए। इस देश का सिद्धांत यह बन रहा है कि संपूर्ण राजनीतिक अधिकार और उनका प्रयोग अधिकसंख्यक अंग (Mjority) के हाथों में दे दिया जाय, और वह दूसरे अंग पर मनमाना अन्याय और अत्याचार करे।

राजनीतिक नेता कहते हैं, तुम संगठन को बंद कर दो, इससे राष्ट्र के दो अंगों में विरोध बढ़ता है, और देश की स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़ा अटकता है। हम एक क्षण के लिये मान लेते हैं कि संगठन से मुसलमानों को आपत्ति है। परंतु प्रश्न उठता है, उन्हें क्यों आपत्ति है? यदि मुसलमान कहें कि इससे देश के काम में विघ्न पड़ता है, तो मैं संगठन के काम को छोड़ दूँगा; परंतु मैं उनसे यह पूछूँगा कि वे देश के लिये क्या कर रहे हैं? और, यदि मुसलमान कहें कि संगठन से हिंदुओं का अस्तित्व बच जायगा, और मुसलमानों का उद्देश्य पूरा न होगा, तो मैं अपने राजनीतिक कार्यकर्ताओं से इस विषय पर एक बार गंभीरता से विचार करने के लिये कहूँगा। यह

निश्चित है कि हिंदू-संगठन के अभाव में हिंदुओं और मुसलमानों में दृढ़ संगठन नहीं हो सकता, और न स्वराज्य ही मिल सकता है।

संगठन का उद्देश्य हिंदुओं की संख्या को कम होने से रोकना और उनके अस्तित्व की रक्षा करना है। जो हिंदू-संगठन के काम मे सहानुभूति नहीं रखता, वह देश-हित के किसी भी कार्य में योग देने की योग्यता नहीं रखता। हिंदुओं को अपनी रक्षा के लिये अपने धर्म की कसौटी की परख नई बनानी पड़ेगी। जो काम हमारी संख्या को बढ़ावे, वही हमारे लिये पुण्य है, और जो हमारी संख्या को घटावे, वही हमारे लिये सब से बड़ा पाप है। हिंदू-जाति में स्त्री का विवाह दूसरी बार नहीं हो सकता। हमारी विधवाएँ हमारी जाति की संख्या घटाकर दूसरी जाति की संख्या को बढ़ा रही हैं। हमारी जाति में एक स्त्री को एक कलंक लग जाता है, तो वह जातिच्युत हो जाती और दूसरी जाति की संख्या बढ़ाती है। मालावार में अभी तक यदि किसी ब्राह्मण-स्त्री को कोई मुसलमान स्पर्श कर दे, तो वह जातिच्युत हो जाती है, और उसका पति उसे त्याग देता है। दूसरी ओर एक वेश्या भी एक सम्मानित मुसलमान से विवाह करके उनके समाज में आदर-पूर्वक रह सकती है। हम इतने गिर गए हैं कि अपनी स्त्रियों को स्वयं धक्का देकर विजातियों के पास भेजते हैं। यह एक सत्य सिद्धांत है कि जिस समाज में स्त्रियों का अनादर होता है, वह नष्ट हो जाता है। वैयक्तिक उन्नति सामाजिक उन्नति के बिना नहीं हो सकती। उदाहरणतः कुश्ती लड़ने से एक मनुष्य पुष्ट होता है; परंतु जाति में कुश्ती लड़ने की प्रथा होने से ही वह यह लाभ उठा सकता है। मुसलमानों में बहु-विवाह की प्रथा है। मनुष्य की पाशविक वृत्ति इस ओर है, और इससे उनकी संख्या-वृद्धि भी होती है। हिंदुओं में दूसरा विवाह करना बुरा समझा जाने लगा है, और अनेक स्त्री-पुरुष निःसंतान मर जाते हैं। हिंदुओं का विश्वास है

कि यदि हमें कोई स्पर्श कर लेगा, तो हम गिर जायँगे, हमारा धर्म भ्रष्ट हो जायगा। इसके विपरीत मुसलमानों और ईसाइयों को सिखलाया जाता है कि घृणित-से-घृणित व्यक्ति को गले लगा लेने से तुम्हारी पवित्रता बढ़ जाती है। हम समझते हैं, जाति की चिंता किए बिना हम उन्नति कर सकते हैं। परंतु इसलाम और ईसाइयत का उपदेश इसके विरुद्ध है। यदि हमें अपना अस्तित्व बचाना है, तो हमें अपने पुराने विचारों को बदलना पड़ेगा।

अछूतोद्धार, स्त्रियों की रक्षा और शुद्धि, ये तीन उपाय हमारी रक्षा के हैं। संगठन के यही तीन अंग हैं। जब तक इसलाम अपनी प्रकृति को नहीं बदलता, हमारी रक्षा का उपाय संगठन के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

हिंदुओं के जीवन का प्रश्न उनकी संख्या के साथ संबद्ध है

पैंतीस वर्ष हुए, जब मैं पहले-पहल लाहौर में आया था। उस समय लाहौर में परिस्थिति बड़ी हृदयाकर्षक थी। लाहौर पंजाब के प्रांतीय जीवन का केंद्र था। उस समय लाहौर में एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई थी, जिसका प्रभाव सभी संप्रदायों पर पड़ा, और कई सांप्रदायिक संस्थाओं में एक विचित्र आंदोलन आरंभ हो गया। उस समय जीवन के जितने चिह्न लाहौर में पाए जाते थे, उतने भारत के अन्य किसी नगर में नहीं पाए जाते थे। सभी मतों और संप्रदायों में एक उत्साह दिखलाई देता था। प्रति दिन नगर की गलियों और दरवाज़ों पर किसी-न-किसी सभा, समाज या संस्था के जलसे की सूचना चिपकी हुई मिलती थी। अन्य प्रांतों से आनेवाले भी इस जागृति और उत्साह को देखकर विस्मित हो जाते थे; क्योंकि किसी और स्थान पर यह उत्साह न देख पड़ता था।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस जागृति का कारण आर्य-समाज का आंदोलन था। स्वामी दयानंद ने अपने एक मामूली दौरे से पंजाब को जगा दिया था। यह कह देने की कोई आवश्यकता नहीं, जैसा कि स्वामी दयानंद स्वयं स्पष्ट कहते हैं, कि समाज कोई नया धर्म अथवा संप्रदाय नहीं है; यह केवल वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और हिंदू-जाति में जीवन पैदा करने के लिये एक संस्था है। स्वामीजी का उद्देश समाज की स्थापना से वही था, जो इसके आंदोलन से उत्पन्न हुआ। इसका प्रभाव मुसलमानों और सिखों पर भी हुआ। मैं लाहौर में एक विद्यार्थी बनकर आया था; परंतु इस व्यापक आंदो-

लन की नींव में जो विचार काम कर रहा था, उसे मैं उस समय भी समझ सकता था। यदि मुझसे आप पूछें कि उस समय मैंने यहाँ क्या देखा, तो मैं संक्षिप्त शब्दों में इतना ही कह देना पर्याप्त समझूँगा कि उस समय सभी संस्थाएँ जाति और देश की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रही थीं, और उनका यह दावा था कि उनके मार्ग पर चलने से ही इस उद्देश में सफलता प्राप्त हो सकेगी। उस समय आर्य-समाज ने स्वामी दयानंद के उद्देश की पूर्ति के लिये काम करना आरंभ किया। आर्य-समाज का काम उस समय गिनती के चुने हुए अँगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के हाथ में था। स्वभावतः उन्होंने सोचा, यदि देश में उनकी-जैसी शिक्षा और संस्कृति का प्रचार कर दिया जाय, तो देश का उद्धार हो जायगा। उन लोगों ने निश्चय किया कि आर्य-समाज को वर्तमान शिक्षा-पद्धति के अनुसार स्कूल और कॉलेज खोलकर आर्य-समाज के सिद्धांतों के साथ-साथ शिक्षा का प्रचार करना चाहिए। उसी समय आर्य-समाज में इस विचार के विरुद्ध एक प्रबल लहर उठ खड़ी हुई। इन लोगों का विचार था कि समाज का वर्तमान शिक्षा-पद्धति से कोई संबंध नहीं, और न इस शिक्षा से समाज के सिद्धांतों का प्रचार ही ठीक तरह हो सकता है। बहुत समय तक यह विवाद समाज में शनैः-शनैः चलता रहा। अंत में समाज दो दलों में विभक्त हो गया।

इसके साथ-साथ समाचारपत्रों में एक विचार का प्रचार किया जा रहा था। इसका आरंभ करनेवाले जालंधर के प्रसिद्ध रईस लाला देवराजजी थे। इनका विचार था कि देशोन्नति के लिये शिक्षा-प्रचार आवश्यक है। इसमें संदेह नहीं; परंतु स्त्रियों में भी शिक्षा-प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। देशोन्नति की गाड़ी के स्त्री और पुरुष दो पहिए हैं। गाड़ी एक पहिए से नहीं चल सकती। लड़कों के लिये स्कूल और कॉलेज हों; परंतु लड़कियों के लिये भी उनका होना आवश्यक है।

आज हम शांति से इन विचारों को सुन लेते हैं; परंतु मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि उस समय के उत्साही सुधारक इन विचारों को इतने जोश से कहते थे कि वे अपने को भी भूल जाते थे। प्रत्येक विचार-शील मनुष्य दूसरों को अपना अनुयायी बनाने की धुन में रहता और इसी में देश-हित का तत्त्व समझता था। उस समय के उत्साही पुरुषों ने न केवल शिक्षा के प्रश्न पर ही ज़ोर दिया, अपितु वे और भी कई प्रकार के आंदोलनों को उत्साहपूर्वक चला रहे थे। उदाहरण के लिये एक निरामिपभोजी दल (Vegetarian Society) बना था, जो यह प्रचार करता था कि जब तक हमारा आहार बिलकुल निरामिप न हो जायगा, किसी प्रकार की भी आत्मिक उन्नति होना संभव नहीं, और न देश की उन्नति ही हो सकेगी। अब भी मेरी आँखों के सामने निरामिषभोजी दल के उत्सवों का दृश्य फिर रहा है—किस प्रकार वे लोग भजनीक और व्याख्यान दाताओं को एकत्र कर इस बात का प्रचार करते थे कि निरामिप-भोजन ही देशोन्नति तथा आत्मिक उन्नति का एक-मात्र साधन है।

मैं देखता हूँ, वे सब लोग अपने आंदोलनों को बिलकुल नेक-नीयती और सफ़ाई से चला रहे थे। उन पर किसी प्रकार की बेई-मानी का दोप नहीं लगाया जा सकता; परंतु इतना स्पष्ट है कि उस समय के कार्यकर्ताओं के प्रयत्न, चाहे वे आर्य-समाजी रहे हों या कोई अन्य, उन सभी निर्बलताओं से पूर्ण थे, जो स्वभावतः उनके जीवन में थीं। उनके लिये अपने हृदय में श्रद्धा और सम्मान अनु-भव करता हुआ भी मैं देखता हूँ, उन्होंने पंजाब को उलटे मार्ग पर चलाकर बड़ा अपराध किया है। मेरी यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार हमारे नेता शिक्षा—वर्तमान शिक्षा—को ही उन्नति का एक-मात्र साधन मान बैठते हैं। मेरा तो दृढ़ निश्चय

है कि इस शिक्षा की अधिकता ने ही हमारा नाश किया है, और इससे बढ़कर यह कि हमने अपना सारा धार्मिक उत्साह और धन भी इस शिक्षा के प्रचार में ही लगा दिया है। उन बेचारों का क्या दोष था ? उनका यह स्वभाव ही था कि जो विचार उनके ध्यान में आ जाता, उसे ही वे देशोन्नति का एक-मात्र उपाय समझ लेते थे। मैंने निरामिषभोजी दल के विषय में कहा है। उस समय ऐसा एक और समाज था, जिसका विचार था कि जब हमारे लड़के कोट, पतलून और हैट पहनना सीख जायँगे, और हमारी लड़कियाँ मेज़ पर बैठकर अँगरेज़ी बोलने लगेंगी, तो हमारा देश स्वयं ही उन्नति कर लेगा। उस समय के कांग्रेस के नेताओं का विचार था कि वर्ष-भर में एक बार कोट, पैंट, बूट और हैट पहनकर एक जगह बैठ ख़ूब धड़ल्ले की अँगरेज़ी बोलने और सिगार पी लेने से देश के प्रति उनका कर्तव्य पूरा हो जाता है।

मुझे शोक इस बात का है कि आर्य-समाज एक धार्मिक संस्था थी ; परंतु उसने अपनी सारी शक्ति विदेशी शिक्षा के प्रचार में लगा दी। मैं इस विषय में बहुत कुछ कह चुका हूँ। अब केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमें एक बार यह सोचने का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी अवस्था क्या है, हम अब तक किधर जाते रहे हैं, और अब भी किधर जा रहे हैं ? हमें अपना यह भ्रम थोड़ी देर तक छोड़कर कि हमारा उद्धार स्कूलों और कॉलेजों से ही हो सकता है, यह सोचना चाहिए कि हम किस आपत्ति में फँसे हुए हैं। एक बहुत स्थूल उदाहरण है। इस मर्दुमशुमारी के समय हमारी संख्या चालीस प्रति शत रह गई है, यदि अगली मर्दुमशुमारी के समय हमारी संख्या पैंतीस रह जाती है, और उससे अगली पर तीस, तो ऐसी पाँच-चार मर्दुमशुमारियों के पश्चात् यहाँ हमारी संख्या उतनी ही रह जायगी, जितनी कि सिंध या पश्चिमोत्तर-प्रांत में है। बताइए, उस समय

हमारे स्कूल, कॉलेज, मंदिर और बड़ी बड़ी दूसरी संस्थाएँ किस काम आवेंगी ?

मुझे तो और सब कुछ व्यर्थ दीखता है। मैं तो हिंदुओं के सम्मुख एक ही प्रश्न देखता हूँ। वह उनकी संख्या का प्रश्न है। इस प्रश्न में और सभी प्रश्नों का समावेश हो जाता है। यही प्रश्न उनके जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। जिस स्थान में जिस समाज की जन-संख्या अधिक होती है, वहाँ न्याय और शासन उसी समाज के हाथों रहता है। कोहाट में जो हुआ, सो सब जानते हैं। अब सिंध से समाचार आ रहे हैं कि निर्बोध लड़कियों पर अत्याचार की हद हो रही है। हिंदू स्वाभाविक ही गवर्नमेंट की ओर देखते हैं; परंतु गवर्नमेंट के पुरज़े तो उन्हीं मनुष्यों के बने हुए हैं, जिनकी आबादी अधिक है।

यदि पुलीस की सहानुभूति आततायियों के साथ हो, तो गवर्नमेंट क्या कर सकती है ? हिंदुओं की सबसे बड़ी निर्बलता यही है कि वे अपनी संख्या घटती हुई देखकर भी चुप हो रहते हैं। पंजाब में हमारी संख्या प्रति दिन घट रही है। इस शिक्षा का केवल इतना ही लाभ हुआ है कि हमें अपनी दीनावस्था का ज्ञान हो गया है। यदि हिंदू इस समय न चेतेंगे, तो फिर किसी और का दोष न होगा। हमारी संख्या के घटानेवाले कारणों को यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं। वे किसी से छिपे हुए नहीं हैं। हमारी विधवाओं की संख्या और जाति-पाँति के बंधन के कारण अनेक पुरुष अविवाहित रहकर संख्या में कमी कर रहे हैं। हमारा परिश्रम के कामों से परहेज़ करना हमें निर्बल और निर्द्धन बना रहा है। हमारा धन का अत्यधिक प्रेम, यहाँ तक कि भोजन भी अच्छा न करना, हमारे स्वास्थ्य के बिगड़ने का मुख्य कारण है। ऐसे ही अन्य कई कारण हैं, जिनसे हम प्रति दिन निर्बल होते जाते हैं। नहीं कह सकते, हम अपने इन रोगों का इलाज कब करेंगे। यदि हम इन रोगों का कोई इलाज नहीं

करते, तो यही अच्छा होगा कि अपने सब समाजों और संस्थाओं को बंद करके बैठ जायँ। स्वयं उलटे मार्ग पर जाने से तथा औरों को भुलाने से क्या लाभ ?

मैं अकसर सोचता हूँ कि हमारे मुसलमान भाइयों में वह कौन-सी शक्ति है, जिससे वे प्रति दिन फैलते जाते हैं। संभव है, इसके कई कारण हों; परंतु मुझे तो एक ही कारण दीखता है, और वह यह कि वे अपने सहधर्मी भाइयों से प्रेम तथा अन्य धर्म के मनुष्य से घृणा का भाव रखते हैं। इसे चाहे आप असहिष्णुता कहिए या धार्मिक उत्साह, परंतु बात यही है, जो मुसलमानों में जीवन बनाए रखती है। मैं हिंदुओं से कहूँगा कि इस समय केवल जातीयता का भाव ही उन्हें बचा सकता है। हिंदू लोग पक्षपात के नाम से ही घबराते हैं; परंतु इतना समझ लेना चाहिए कि देश-प्रेम का अर्थ ही अपनी जाति से प्रेम करना तथा अन्य जातियों से घृणा करना है। ईश्वर ने मनुष्य में राग-द्वेष स्वाभाविक ही उत्पन्न किए हैं। द्वेष को मारकर मनुष्य देवता बन जाता है; परंतु वह मनुष्य नहीं रहता। मनुष्य के लिये राग और द्वेष, दोनों ही आवश्यक हैं। हिंदुओं की आध्यात्मिकता ऐसे उलटे मार्ग पर चली गई है कि वे अपनी धार्मिक शिक्षा को भी ठीक-ठीक समझने के अयोग्य हो गए है। हिंदू कई रियासतों में राजा हैं। अपने धर्म को फैलाना तो दूर रहा, वे उसके बचाने की भी चेष्टा नहीं करते। बेगम भोपाल के क़ानून किसी से छिपे नहीं। कुछ ही दिन हुए, मुझे एक पत्र मिला है, जिससे मालूम हुआ कि हैदराबाद-जैसी बड़ी रियासत का उत्तरदायी नवाब भी मौलाना हसन निज़ामी की स्कीम पर चलकर प्रति वर्ष हिंदुओं को मुसलमान बनाने के लिये छः लाख रुपए वार्षिक व्यय कर रहा है। हैदराबाद रियासत की प्रजा अधिकांश हिंदू है, और यह रुपया भी उसी की जेब से आता है। हिंदू-रियासतों में संकीर्णता छोड़कर

मुसलमानों को उत्तरदायित्व के पदों पर प्रतिष्ठित किया जाता है; परंतु मुसलमान रियासतों में हिंदुओं को कोई पद नहीं मिलता। संभव है, भविष्य में कोई हमारी भी ऐसी ही समालोचना करे, जैसी मैं अपने पूर्वजों की कर रहा हूँ। परंतु आनेवाली पीढ़ियाँ इतना तो मानेंगी कि हम मूर्खों की भाँति लकीर के फ़क़ीर नहीं थे। हमने परिस्थिति के अनुसार जो कुछ उचित समझा, वही किया।

हिंदू-जाति के लिये संगठन एक आशीर्वाद है

लाला रामप्रसादजी आर्य-समाज के पुराने सेवक हैं। आपने अपने लेखों और व्याख्यानों से समाज की जो सेवा की है, और जैसा त्याग किया है, उनके थोड़े ही उदाहरण मिलते हैं। राजनीतिक जागृति के समय भी आप पीछे नहीं रहे। 'वंदे मातरम्' पत्र का संपादन करते हुए आप डेढ़ बरस का कारावास भी भोग आए हैं। जिस समय लाला लाजपतरायजी स्विट्ज़रलैंड गए थे, तो अछूतोद्धार-कमेटी का काम लाला रामप्रसादजी को सौंप गए थे। उस समय मैंने उन्हें लिखा कि इस समय हिंदू-संगठन के काम की बड़ी आवश्यकता है, और आप-जैसे महानुभावों को इसमें योग देना चाहिए। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि वह काम करने के लिये तो तैयार हैं; परंतु अछूतोद्धार का काम करते हुए उन्हें अनुभव हुआ है कि हिंदुओं में जीवन का सर्वथा अभाव हो गया है। केवल आर्य-समाजियों में ही कुछ जीवन है; वे ही देश की व्यथा का अनुभव करते हैं, और उसके लिये कुछ करने को तैयार भी हैं। मैं इस बात को मानता हूँ; परंतु साथ ही यह भी कह देना चाहता हूँ कि हिंदुओं की इस निर्जीवता का उत्तरदायित्व भी आर्य-समाज पर ही है। आप कहेंगे—"यह कैसे हो सकता है? समाज ने तो सदा ही आपत्ति में हिंदुओं की सेवा की है।" मैं आपकी इस दूसरी बात को भी मानता हूँ। परंतु फिर भी कहूँगा कि मैं जो कुछ कहता हूँ, वह ठीक है। जिस समय स्वामी दयानंद पंजाब में आए, पजाब के हिंदुओं ने उससे पूर्व ही उनके लिये मैदान तैयार कर रक्खा था। स्वामी दयानंद का उद्देश, जैसा कि उन्होंने स्वयं भी कहा है, कोई

नया संप्रदाय खड़ा करना नहीं था, अपितु हिंदू-जाति को ही एक करना था। हिंदू-जाति को एक करने का साधन उन्होंने वैदिक धर्म के प्रचार को ही समझा। पंजाब में इस काम के लिये लोग पहले से ही इच्छुक थे। वे उनके पीछे हो लिए। उस समय समाज में शायद ही कोई व्यक्ति इसे नया पंथ समझकर प्रविष्ट हुआ होगा। स्वामीजी स्वयं सोच-विचार और विचार-परिवर्तन के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे थे। जिस समय वह स्वामी विरजानंदजी से दीक्षा लेकर प्रचार के लिये चले थे, स्वयं शिव के पुजारी थे। उस समय उनका विचार सब हिंदुओं को शैव-मत में दीक्षित करने का था। जयपुराधीश रामसिंह उनके शिष्य बन गए थे। वह स्वयं लिखते हैं—"मैंने अपने हाथों से सहस्रों को रुद्राक्ष की माला पहनाई, यहाँ तक कि हाथियों और घोड़ों को भी रुद्राक्ष की मालाएँ पहना दी गईं।" कुछ मास पश्चात् स्वामीजी का विचार बदल गया। राजा रामसिंह आगरे जाने लगे, तो उन्हें भय हुआ कि कहीं आगरे के वैष्णव स्वामी रंगाचार्य से शास्त्रार्थ न हो जाय। उन्होंने स्वामीजी को बुला भेजा। परंतु स्वामीजी ने कहला भेजा—"मेरा मत अब बदल चुका है, मेरा विश्वास शैव मत में नहीं रहा।" राजा साहब उनसे क्रुद्ध हो गए, और उनका संबंध दरबार से टूट गया। इसके पश्चात् स्वामीजी अपने गुरु विरजानंदजी के पास शंका-समाधान करने के लिये मथुरा गए। वहाँ उन्होंने सब संप्रदायों से ऊपर हो जाने का निश्चय कर लिया।

आर्य-समाज कोई संप्रदाय न होकर केवल हिंदुओं की उन्नति के लिये आंदोलन था, इसलिये इस समय के प्रायः सभी उत्साही सज्जन इसमें सम्मिलित हो गए। यदि आर्य-समाज अपने पुराने उद्देश पर स्थिर रहता, तो आज यह कोई न कह सकता कि हिंदू मुर्दा हो गए हैं। हिंदुओं में भिन्नता का रोग बहुत गहरा चला गया है। वे स्वयं ही अलग होकर एक पृथक् संप्रदाय बना लेते हैं। जात बिरादरी की

नींव पर ढले हुए इनके समाज में भिन्नता बहुत गहरा घर कर गई है। आर्य-समाज हिंदुओं के उद्धार के लिये उत्पन्न होकर भी एक पृथक् संस्था बन गई। संभव है, यदि आर्य-समाज के मुक़ाबले में सनातन धर्म-सभाएँ न बनतीं, तो वह हिंदुओं से पृथक् न समझा जाता। आज समाजियों में देशोपकार की लगन प्रबल है। वे चाहते हैं, देश का काम हो और उसका सेहरा समाज के सिर बँधे, जिससे जनता आकर्षित होकर समाज में सम्मिलित हो जाय। आर्य-समाज की संख्या बढ़ाना एक साधन न रहकर स्वयं उद्देश बन गया। जब कभी दुर्भिक्ष पड़ा, भूचाल आया, या अन्य कोई विपत्ति आई, आर्य-समाज ने लोगों से चंदा एकत्र कर उस जगह ख़ूब काम किया। इस काम की आवश्यकता में और नेकनीयती में किसी को संदेह नहीं हो सकता। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वसाधारण का यह विचार हो गया कि यदि किसी को हिंदुओं की चिंता है, तो वह आर्य-समाज को। हिंदुओं के शेप सब अंग निर्जीव हैं। इन सबका कारण काम का आर्य-समाज के नाम पर होना था। यदि ये काम आर्य-समाजी आर्य-समाज के नाम पर न करके हिंदुओं के नाम पर करते, जैसा कि इस समय हिंदू-संगठन के आरंभ होने पर कोहाट में हुआ, हिंदू-जाति मुर्दा न कहलाती, और उसमें जातीयता का भाव जाग्रत् हो जाता। हिंदू-सभा के नाम पर कोहाट-सहायता फ़ंड में रुपया जमा हो जाने से मुझे कोई मतलब नहीं। मैं यह बताना चाहता हूँ कि हिंदू-सभा के नाम पर काम करने से हमने हिंदुओं में वह जागृति उत्पन्न कर दी है, जिसे हमने पहले स्वयं ही मार दिया था।

अब मैं लाला रामप्रसादजी की बात पर आता हूँ। यह ठीक है कि अछूतोद्धार का काम हिंदुओं के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। लालाजी कहते हैं कि हिंदू सम्मिलित होकर अछूतोद्धार के काम में

भाग नहीं लेते, इसीलिये वे निर्जीव हैं। मैं कहता हूँ हिंदुओं में जो लोग अनुभव कर सकते थे, वे तो पहले ही आर्य-समाज तथा दूसरी संस्थाओं में चले जा चुके हैं। यदि आर्य-समाजी इस काम को करते हैं, तो क्या यह हिंदुओं का काम नहीं है ? और, क्या आर्य-समाजी हिंदू नहीं ?

शेष अंगों के अभी तक सोए रहने का एक कारण यह भी है कि आर्य-समाज अछूतोद्धार के काम को भी आर्य-समाज के प्रचार का साधन बना रहा है। शेष हिंदू न तो अभी तक कुछ अनुभव ही करते हैं, और न उनमें कुछ करने की इच्छा ही उत्पन्न होती है। वे अभी तक यह नहीं समझे कि जाति की रक्षा करना ही उनका मुख्य धर्म है। वे यह भी नहीं समझते कि हिंदुओं को साथ न मिलाने से उनका अस्तित्व शंका में है। सार यह कि उनमें अभी तक जातीयता का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। जिस दिन हिंदुओं में जातीयता का भाव उत्पन्न हो जायगा, उस दिन अछूतोद्धार एक दिन में ही हो जायगा। समाज का कर्त्तव्य था कि वह हिंदुओं में इस भाव का प्रचार करता ; क्योंकि वह सबसे पहले जाग उठा था।

आर्य-समाज में ऐसे सज्जन भी हैं, जिनका यह विचार है कि हिंदू-शुद्धि तथा हिंदू-अछूतोद्धार से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनका काम आर्य-समाज का प्रचार करना है। वे लोग हिंदू-धर्म में रहें या आर्य-समाज के बाहर, किसी अन्य धर्म में, उनके लिये समान है। मुझे क्षमा किया जाय, मैं ऐसे विचारों को जाति-द्रोह समझता हूँ। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्य-समाज कोई नया पंथ है, आर्य-समाजियों का उद्देश्य केवल आर्य-समाज का प्रचार करना है। आर्य-समाज का प्रचार हो जायगा, तो देशोन्नति स्वयं ही हो जायगी। मैं आर्य-समाज को अंतिम ध्येय नहीं समझता। मैं आर्य-समाज को हिंदू-जाति की उन्नति के लिये एक संगठन समझता हूँ। आर्य-समाज का प्रचार हो जाय, तो देश की अवस्था सुधर जायगी,

इस बात को मैं वैसा ही समझता हूँ, जैसे जब तक ईरान से तरयाक बूटी लाई जायगी, तब तक साँप का काटा हुआ मर जायगा। हिंदू-जाति की रोग के दूर करने के लिये संगठन की बूटी की व्यवस्था हुई है। हमें और सब कुछ छोड़कर इसी की साधना में लग जाना चाहिए।

मेरे कई पुराने मित्र कहेंगे कि मेरा इस प्रकार समाज की कड़ी समालोचना करना अनुचित है। मैं उनकी सेवा में निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरी यह समालोचना विशेषतः समाज के ऊपर नहीं है। मुझे तो हिंदुओं के सारे इतिहास में यही न्यूनता दिखाई देती है। क्षत्रियों का काम देश की रक्षा करना था। शनैः-शनैः वर्ण पर जन्म की क़ैद लग गई, और देश के शासन का काम क्षत्रियों को सौंप दिया गया। जिस समय देश पर विदेशी आक्रमण हुए, क्षत्रियों की संख्या बहुत थोड़ी रह गई थी। अन्य सब वर्ण देश की डूबती नौका की चिंता न कर अपने काम-काज में लगे रहे। क्षत्रियों ने भी अभिमानवश किसी को साथ न लिया।

गुरु गोविंदसिंह ने क्षत्रियों की आवश्यकता का अनुभव करके नए क्षत्रियों—अर्थात् खालसा—को जन्म दिया। कुछ समय पश्चात् अपने को विशेष-शक्ति-सपन्न समझ उन्होंने शेष हिंदुओं से पृथक्ता ग्रहण कर ली। मुझे यह आशंका है कि कहीं आर्य-समाज भी इस मिथ्याभिमान के शिकार न हो जाय। इस समय आर्य-समाज के सम्मुख दो ही मार्ग हैं। या तो वह अपने को शेष हिंदुओं से पृथक् करके अपना अलग एक संप्रदाय बना ले, अथवा हिंदू-जाति का आत्मा बनकर उनमें मिलकर एक हो जाय। दूसरी अवस्था में समाज को अपना हृदय उदार बनाना पड़ेगा, हिंदुओं को जगाने के लिये हिंदू बनकर मैदान में आना होगा, और परिस्थिति तथा अवस्था को देखते हुए इसे ही अपना मुख्य धर्म मान लेना होगा।

कांग्रेस और हिंदू-संगठन

मेरी समालोचना से किसी के हृदय में कोई संदेह न हो जाय, इसलिये मैं यह पहले ही कह देना चाहता हूँ कि स्वराज्य को मैं मुख्य और सबसे ऊँचा आदर्श समझता हूँ। इस आदर्श की प्राप्ति के लिये मैं सब कुछ बलिदान कर देना अपना• कर्तव्य समझता हूँ। यही दूसरे प्रत्येक भारतवासी का भी कर्तव्य समझता हूँ। परंतु कांग्रेस स्वराज्य नहीं है। कांग्रेस एक संगठन है, जिसे हम स्वराज्य की प्राप्ति का मुख्य साधन समझते हैं। आजकल सर्वसाधारण दोनों में कोई भेद नहीं समझते।

इस विश्वास से लाभ उठाकर कांग्रेस के कार्य-कर्ता समय-समय पर दूसरे आंदोलनों का विरोध करते रहे हैं। यदि कांग्रेस और स्वराज्य एक वस्तु होते, और स्वराज्य-प्राप्ति का साधन केवल कांग्रेस के जलसे ही होते, तो निस्संदेह कांग्रेस के अतिरिक्त किसी दूसरे आंदोलन की कोई आवश्यकता न होती। परंतु स्वराज्य-प्राप्ति का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। कांग्रेस को अपने उद्देश की पूर्ति के लिये कोई नया मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा। कांग्रेस का मार्ग कभी सीधा होता रहा है और कभी उलटा। जब कांग्रेस सीधे मार्ग पर चली है, स्वराज्य निकट आया है, और जब उलटे मार्ग पर चली है, तब वह दूर चला गया है। इन कारणों से मैं कांग्रेस और उसके काम की समालोचना करना बुरा नहीं समझता और इसी विचार से हिंदू-संगठन को कांग्रेस के मुक़ाबले में रख अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ।

इन दोनों आंदोलनों के आरंभ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि

कांग्रेस का आरंभ करनेवाले वे लोग थे, जो इस देश में अँगरेज़ी शासन को ही अधिक दिनों तक स्थिर रखना चाहते थे। इसके विपरीत हिंदू-संगठन किसी ऐसे अभिप्राय से चलाया गया आंदोलन नहीं है। यह देश की परिस्थिति के अनुसार जाति के हृदय से निकली हुई पुकार है। हिंदू-संगठन के विरुद्ध कुछ कहना हिंदू-जाति की पुकार को कुचलना और उसका विरोध करना है। सन् १८५७ में देश में एक विप्लव हुआ, जिसे हम इस देश के निवासियों की स्वतंत्रता प्राप्त करने की अंतिम चेष्टा कह सकते हैं। इसके पश्चात् सन् १८७१ में पंजाब में कूके सिक्खों ने सरकार के विरुद्ध सिर उठाया, और पंजाब में एक गुप्त षड्यंत्र का भेद खुला। इसके थोड़े समय पश्चात् ही पंजाब में आर्य-समाज प्रकट हुआ। इस कारण से आर्य-समाज पर गवर्नमेंट की संदेह की दृष्टि थी। इसी समय युक्त-प्रांत में स्थान-स्थान पर गोरक्षिणी सभाएँ स्थापित हो गईं। सरकार इन्हें भी शंका के योग्य समझती थी। इसी समय महाराष्ट्र में भी कुछ लोगों ने सरकार के विरुद्ध गुप्त अभिसंधि की। इन सब कारणों से सरकारी अफ़सरों के मन में संदेह हो जाना स्वाभाविक ही था। असुविधा यह थी कि अँगरेज़ अफ़सरों की, जो देश की प्रजा में आटे में नमक के बराबर थे, यह समझ में न आ सकता था कि प्रजा के भिन्न-भिन्न समाजों में कैसे भाव फैल रहे हैं। प्रत्येक जाति और प्रत्येक समय में कुछ-न-कुछ ऐसे मनुष्य पाए जाते हैं, जो देश के सम्मान और हित तथा मनुष्य-समाज की स्वतंत्रता और उन्नति के लिये अपने वैयक्तिक लाभ का तो कहना ही क्या, अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार हो जाते हैं। ये ही लोग बलिदान का भाव उत्पन्न करनेवाले होते हैं। ऐसे लोगों के कारण सर्वसाधारण में जो भाव फैल जाते हैं, उनका जानना और जानकर उनका उपाय करना ही सरकारी अफ़सरों की चिंता का मुख्य कारण था।

इस समय तक भारतवासी क़ानूनी आंदोलन के ढंग से परिचित न थे। उस समय उन्हें इसका परिचय मिलने से स्वाभाविक था कि वे इस ओर प्रवृत्त हो जाते, और उनके हृदय में छिपे हुए भाव प्रकट हो जाते। उस समय के वायसराय लार्ड डफरिन ने इस काम के लिये मिस्टर ह्यूम को बुलाया। मिस्टर ह्यूम विप्लव के समय इटावे के कलक्टर थे, और इन्हें अपनी प्राण-रक्षा के लिये एक मुल्ला का वेष बनाकर भागना पड़ा था। वायसराय महोदय ने मिस्टर ह्यूम को कांग्रेस स्थापित करने की अनुमति दी। मिस्टर ह्यूम ने बंगाल और बंबई के चुने हुए आदमियों को लेकर कांग्रेस की स्थापना कर दी। पहले दो-तीन वर्ष तक कांग्रेस को गवर्नमेंट की ओर से शाबाशी मिलती रही। कुछ बरसों में कांग्रेस ने अधिक साहस दिखाना आरंभ किया, इससे गवर्नमेंट ने अपना ढंग बदल दिया। गवर्नमेंट के नौकरों को कांग्रेस में भाग लेने से मनाही कर दी गई। यद्यपि गवर्नमेंट के ढंग के बदल देने से यह शंका होती है कि गवर्नमेंट कांग्रेस के विरुद्ध हो गई थी, परंतु इस कूट-नीति में एक रहस्य छिपा हुआ था। वह यह कि गवर्नमेंट के कांग्रेस से विरुद्ध होने से ही कांग्रेस उन देश-प्रेमियों को आकर्षित कर सकती थी, जिनके हृदय में देश की लगन थी, और जिनके भावों को जानना ही गवर्नमेंट का उद्देश्य था।

प्रायः बीस बरस तक कांग्रेस इसी तरह काम करती रही। सन् १९०५ से कांग्रेस में कुछ परिवर्तन होने लगा। इस समय से देशभक्त लोगों ने कांग्रेस को हथियाने के प्रयत्न आरंभ कर दिए थे। इस समय कांग्रेस में दो दल गरम-दल तथा नरम-दल बन गए। प्रायः तीन वर्ष तक कांग्रेस गरम-दल अर्थात् देश-भक्त लोगों के हाथों में रही। सन् १९०८ में गवर्नमेंट की सहायता से देश-भक्त दल को कुचल दिया गया, और कांग्रेस फिर अपने पुराने ढंग पर चलने लगी। इसके दस बरस बाद फिर देश-भक्त दल ने कांग्रेस में प्रबलता पाने का प्रयत्न आरंभ

किया और उसका परिणाम यह हुआ कि लखनऊ में कांग्रेस का काया-पलट हो गया। अभिप्राय यह कि कांग्रेस का जन्म कुछ ऐसा नहीं है, जिस पर हम गौरव कर सकें, और न कांग्रेस का पिछला इतिहास ही ऐसा है, जिससे राष्ट्रीयता के भाव के उत्पन्न होने की आशा की जा सके। विरुद्ध इसके स्वय कांग्रेस को ही सीधे मार्ग पर लाने के लिये देश-भक्तों को अनेक कष्ट सहने तथा बलिदान करने पड़े हैं। कांग्रेस का सुधार करना भी देश-भक्तों के मार्ग में एक महत्त्व-पूर्ण काम था।

दूसरी ओर हिंदू-संगठन के आंदोलन को देखिए। जो लोग हिंदू-संगठन को हिंदू-मुसलिम एकता में बाधक तथा स्वराज्य के मार्ग में रुकावट समझते हैं, वे हिंदू-जाति के मनोभाव को समझने में असमर्थ हैं, और इस जाति की दशा को आँखों से ओझल रखना चाहते हैं। हिंदू-जाति कुछ शताब्दियों से उत्पन्न हुई एक जाति नहीं है। इसका अतीत इतिहास केवल उज्ज्वल ही नहीं, परंतु इतना प्राचीन है कि संसार की शायद हो किसी दूसरी जाति का इतिहास वहाँ तक पहुँच सकेगा। अपने पुराने इतिहास में हिंदू सदा से अपनी वीरता और विनम्र स्वभाव के लिये प्रसिद्ध चले आए हैं। हिंदू-सभ्यता में विचार-स्वतंत्रता इस सीमा तक पाई जाती है कि इसका उदाहरण संसार में और कहीं नहीं मिलता। हिंदुओं में ऐसे सैकड़ों संप्रदाय हैं, जिनके विचारों और विश्वासों में आकाश-पाताल का अंतर है। इनका आपस में झगड़ा होना तो दूर रहा, कभी परस्पर मनोमालिन्य भी नहीं हुआ। हिंदू-धर्म की आत्मा को भगवान् कृष्ण ने कितने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर दिया है। वह कहते हैं—"जो जिस मार्ग से चलकर मुझे मिलना चाहता है, मैं उसे उसी मार्ग पर आगे से चलकर मिलता हूँ; क्योंकि अंत में सब मार्ग मेरी ही ओर आते हैं।"

हिंदू-सभ्यता अत्यंत प्राचीन है, वह केवल इतना ही नहीं कहती कि सभी मार्गों पर तुम साहस और वीरतापूर्वक चले जाओ; परंतु

इससे भी ऊँचे एक सत्य का उपदेश करती है, जिस विचार तक पहुँचना किसी दूसरी सभ्यता के मस्तिष्क के लिये असंभव है। वह यह कि सभी मार्ग ठीक हैं, और अंत में ईश्वर तक उसी तरह पहुँच जाते हैं, जिस तरह सारे नदी-नाले अंत में समुद्र में जा पहुँचते हैं। हिंदू-जीवन का संसार में यही सबसे बड़ा उद्देश्य है, और हिंदू जीवित रहकर संसार में इस विचार को कार्य रूप में परिणत कर देना चाहते हैं।

इस उदारता और वीरता का यह परिणाम हुआ कि हिंदुओं ने कभी किसी शक्ति से भय नहीं किया और न किसी से घृणा की। इसलिये उनमें दूसरों का मुक़ाबला करने के लिये सामाजिक संगठन दृढ़ नहीं हुआ। हाँ, आप कहेंगे—"क्या दूसरों को म्लेच्छ कहने में और छुआछूत की प्रथा में घृणा का भाव नहीं झलकता ?"

मैं मानता हूँ कि इसमें निस्संदेह ऐसा भाव है; परंतु यह भाव कैसे उत्पन्न हुआ, यह जानने के लिये हमें मुसलमान ऐतिहासिक अलबूनी की बात सुननी होगी। अलबूनी भारत में महमूद ग़ज़नवी के साथ मुसलमानों के आक्रमणों के आरंभ में ही आया था। वह लिखता है—"इस घृणा का कारण महमूद ग़ज़नवी की लूट-मार तथा क्रूरता था। हिंदू उन आक्रमणों के कारण और भेद को समझ ही न सकते थे। इस देश में युद्ध होते अवश्य थे; परंतु धर्म के निर्धारित नियमों के अनुसार।" जो लोग इन आक्रमण करनेवाले मुसलमानों के साथ मिल गए, हिंदुओं ने उनसे कोई संबंध न रक्खा। यह छुआछूत एक प्रकार का पूर्ण असहयोग था। अपनी रक्षा के लिये हिंदुओं का ऐसा करना आवश्यक भी था। इसी के सहारे उन्होंने अपनी जाति की रक्षा इस्लाम की उस शक्ति से की, जो अनेक सभ्यताओं को निगलकर इस देश में पहुँची थी।

उस समय के हिंदुओं में देश-भक्ति का भाव भरपूर था। मुसल-

मान स्वभावतः ही उनके शत्रु थे। वही प्रभाव अभी तक थोड़ा-बहुत हमें दीखता है। मुसलमानों के हृदयों में हिंदुओं की अपेक्षा इस देश के लिये कम प्रेम है।

महात्मा गांधी ने वास्तव में कांग्रेस को ही एक राष्ट्रीय संस्था बना दिया है। जो लोग शराब, कचेहरियों, विदेशी कपड़े और विदेशी शिक्षा की हानियों को समझ सकते थे, वे सब उनके साथ हो लिए। मुसलमानों के लिये असहयोग का कार्य-क्रम पर्याप्त न था, इसलिये महात्माजी ने कांग्रेस के साथ ख़िलाफ़त को भी मिलाकर उन्हें अपने साथ कर लिया। यह कहना कठिन है, यदि ख़िलाफ़त का प्रश्न न होता, तो मुसलमान महात्माजी के साथ मिलते या न मिलते। मुसलमानों की इस जागृति का प्रभाव यद्यपि मेसोपोटामिया, टर्की और मिसर की शासन-व्यवस्था पर बहुत गहरा पड़ा, और इन देशों की अँगरेज़ों की अधीनता में चले जाने से रक्षा हो गई, परंतु इसका प्रभाव कांग्रेस पर बहुत बुरा पड़ा। यह निश्चित है कि हिंदोस्तान के मुसलमानों की सहानुभूति भारत की अपेक्षा बाहर के मुसलिम देशों से अधिक रहती है।

मैं इसे कांग्रेस की बड़ी भारी निर्बलता समझता हूँ कि कांग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ ख़िलाफ़त का अधिवेशन हो और उसका प्रभाव कांग्रेस के प्रस्तावों पर पड़े। इससे न केवल मुसलमानों का एक पृथक् संगठन दृढ़ होता है, प्रत्युत वे भारत की राष्ट्रीयता पर अनुचित दबाव डालने की चेष्टा करते हैं। मुसलमानों का यह ढग कांग्रेस के उद्देश्य की प्रगति में बाधक है। शोक है कि कांग्रेस अपने अनुभव से लाभ न उठाकर अब भी इन शृंखलाओं से मुक्त नहीं होना चाहती। जब तक कांग्रेस अपने को मुसलमानों के पृथक् संगठन से, चाहे वह मुसलिम लीग हो या ख़िलाफ़त, अपने को स्वतंत्र नहीं कर लेती, मुसलमानों में राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न न होगा। न

वे देश के भक्त बनकर कांग्रेस के साथ काम करने के लिये तैयार होंगे, न उनमें हिंदुओं के साथ एकता करने के लिये कोई दल उत्पन्न होगा। आज ख़िलाफ़त को बंद कर दो, फिर देखो, कितने मुसलमान कांग्रेस में शामिल होते हैं। उनके नाम लिख लीजिए। यही उस दल के आदमी होंगे, जो एकता और स्वराज्य के इच्छुक हैं। कांग्रेस की कमज़ोरी को दूर करने का यही उपाय है।

हिंदू-मुस्लिम अनैक्य की जड भी इसी निर्बलता में है। हिंदू कांग्रेस के पीछे सच्चे हृदय से लगे हुए हैं। कांग्रेस वास्तव में हिंदुओं और मुसलमानों की सम्मिलित संस्था है, जैसा कि उसके संचालक भी कहते हैं। मुसलमान कांग्रेस के साथ केवल मौखिक सहानुभूति ही दिखाकर, अपने हृदय में अपने मज़हब का ध्यान रख उसी के हित-साधन में लगे रहे। कांग्रेस के साथ-साथ मुसलमानों का संगठन भी दृढ होता गया। जब मुसलमानों को टर्की का निर्णय होते दीख पडा, और यह मालूम हुआ कि उन्हें कांग्रेस की अपेक्षा सरकार से मिलने में अधिक लाभ है, तो उन्होंने तुरत काफ़िर की पदवी ऍंगरेज़ों के सिर से हटा हिंदोस्तानियों के सिर पर रख दी, और स्थान-स्थान पर झगड़े-फ़साद के लिये तैयार हो गए। पिछले दो-तीन वर्षों की घटनाओं ने इस बात का पर्याप्त प्रमाण दे दिया है कि हिंदुओं के साथ उनकी एकता केवल दिखाने की थी।

मालाबार से लेकर देहली तक और काश्मीर से लेकर गुलबर्गा तक ये घटनाएँ इतनी ताज़ी हैं कि इनका यहाँ लिखना अनावश्यक जान पडता है।

महात्मा गांधी का आंदोलन हिंदुओं के मन में बहुत गहरा पैठ गया है। उनके हृदयों में स्वराज्य के लिये प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गई है, और उन्हें यह भी निश्चय दिला दिया गया है कि हिंदू-मुसलिम एकता के अभाव में स्वराज्य की प्राप्ति असंभव है। यहाँ तक तो बात

सीधी है, परंतु इससे आगे एक बड़ी रुकावट आ जाती है। एकता के लिये हिंदुओं और मुसलमानों के हृदयों में समान इच्छा होनी आवश्यक है। हिंदुओं के दिल में यह बात भी बैठ गई है कि सर्व-साधारण मुसलमान और उनके लीडर इस एकता के लिये इच्छुक नहीं हैं। सरकार का हित भी इसी में है कि यह एकता न हो। सरकार मुसलमानों को धमकी देती है, और उससे उत्साहित होकर मुसलमान हिंदुओं से भिड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं।

मुसलमानों में गुंडों की सख्या भी कम नहीं है। वे सदा ही ऐसे अव-सर की प्रतीक्षा में रहते हैं। उनके समाचार-पत्र और वकील भी उन्हें उत्साहित करने के लिये तैयार रहते हैं। ऐसी अवस्था में हिंदुओं के लिये कौन-सा उपाय है? कांग्रेस के कुछ नेता हमसे कहते हैं कि हिंदुओं को मुसलमानों की माँगों के आगे झुककर स्वराज्य के लिये बलि-दान करना चाहिए; परंतु हिंदुओं की अपनी आत्मा उनसे यह कहती है कि वर्तमान घटनाओं का परिणाम तथा अतीत इतिहास उन्हें यही बताते हैं कि झुक जाने में उनका हित नहीं है। कोई एक हिंदू नहीं, परंतु जाति का प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लग गया है कि हिंदू-मुसलिम एकता का यही एक उपाय हो सकता है कि हिंदू सबल और सशक्त हों।

हिंदू-सगठन का प्रयोजन मुसलमानों का विरोध नहीं, बल्कि इसका उद्देश्य उनसे एकता का दृढ़ संबंध स्थापित करना है। इसलिये हिंदू-संगठन स्वराज्य की पहली सीढ़ी और कांग्रेस का एक आवश्यक अंग है। जो लोग हिंदू-संगठन का विरोध कांग्रेस के हित की दृष्टि से करते हैं, वे न तो हिंदू-संगठन के अभिप्राय को समझते हैं, न कांग्रेस के उद्देश्य को।

यदि हिंदू-संगठन से एकता न भी हो, तो यह स्वतः एक लाभ-दायक आंदोलन है। इस देश के राजनीतिक इतिहास का अनुशीलन

करने से जान पड़ेगा कि इस देश के निवासी सभी सद्‌गुणों में अपने आक्रमणकारियों से कहीं बढ़े-चढ़े थे; परंतु उनसे पराजित होते रहे। इसका एक-मात्र कारण यह था कि उनमें संगठन न था। इनके विरोधियों में कोई और गुण चाहे न रहा हो, परंतु संगठन पर्याप्त मात्रा में था। हिंदुओं की इस एक न्यूनता ने इन्हें एक असफल जाति बनाकर पराधीनता में फसा इनके सब गुणों पर पानी फेर दिया। संगठन ही हिंदुओं की बीमारी और कमज़ोरी का उपाय है। सगठित होकर हिंदू अकेले भी स्वराज्य के आंदोलन को सफल बना सकते हैं।

सांप्रदायिक दृष्टिकोण से देखने पर मालूम होता है कि इस देश में प्रचलित अनेक संप्रदायों के प्रवर्तकों ने इस जाति को अनेक भागों में विभक्त कर दिया है। वही सांप्रदायिक भाव जो इसलाम में संगठन उत्पन्न कर सब देश के मुसलमानों को एक सूत्र में बाँधने का कारण हुआ, हमारे लिये फूट का कारण बना। गुरु गोविंदसिंह ने जाति की फूट को दूर करने के लिये नए क्षत्रियों अर्थात् खालसा को जन्म दिया; क्योंकि इसका आधार सांप्रदायिक था। इसलिये सिख लोग भी अपने को हिंदुओं से पृथक् कर हिंदू-जातीयता से पृथक् हो रहे हैं। स्वामी दयानंद ने आर्य-समाज इसलिये स्थापित किया कि वह हिंदुओं की पृथक्ता को दूर कर एकता को उत्पन्न करे; परंतु वे भी सांप्रदायिक रग पकड़कर हिंदुओं से अलग हो रहे हैं। सनातनधर्म-सभाओं ने तो आर्य-समाज के विरोध के अतिरिक्त और कोई काम अपने हाथ में अभी तक नहीं लिया है। हिंदू-संगठन के आंदोलन में कोई नवीन बात नहीं है, इसलिये विरोध होने की कोई शंका नहीं हो सकती। यह पहला आंदोलन है, जो हिंदुओं को एक करने के अभिप्राय से चला है। इसलिये यह हिंदुओं के और इस देश के लिये अत्यंत आशाजनक है।

जहाँ इसलाम और अरबी सभ्यता मज़हबी उत्तेजना और असहिष्णुता का पाठ पढ़ाती है, वहाँ हिंदू-सभ्यता बालकपन से ही विनय, सहनशीलता और भ्रातृभाव की शिक्षा देती है। हिंदू माता बचपन से ही बालक को उपदेश देती है—"यह चींटी है। इसे दुःख मत दो। इस पर तुम्हारा पैर न पड़ जाय। यह चिड़िया है, इसे नाज खिलाओ। देखो इस पर कंकड़ न फेकना। इसे भी उसी प्रकार कष्ट होता है, जैसे तुम्हें मारने से होता है।" मुसलमान बच्चे का हृदय मुर्ग़ी को हलाल करके बड़ा प्रसन्न होता है। वह चाक़ू उठाता और मुर्ग़ी का गला काट देता है, इससे उसका मनोविनोद होता है। इसका क्या परिणाम होता है ? हिंदू-बालक के स्वभाव से साहस और वीरता का अंश उड़ जाता है। वह मुसलमान लड़के से बातचीत करता हुआ अपने संप्रदाय की निंदा और उसके मज़हब की प्रशंसा करके उसे प्रसन्न करना चाहता है। सांसारिक व्यवहार में भी वह अपनी निंदा तथा दूसरे की प्रशंसा कर उसे प्रसन्न करने का यत्न करता है। दिल्ली के एकता-सम्मेलन (Unity Conference) में हमारे कई नेताओं ने अपना हिंदू-धर्म से संबंध ही अस्वीकार किया, और वे गोहत्या के प्रश्न पर मुसकिराते थे। कहते थे—"ये हिंदू कैसे मूर्ख हैं, जो गोहत्या को राष्ट्रीय प्रश्न बना रहे हैं। इन्हें होटलों में गोमांस खाना पड़ता है; ये ऐसे मूर्ख हैं कि एक गाय के मारे जाने पर बिगड़ खड़े होते हैं।" हिंदू ही ऐसे पतित हैं, जो ऐसे आदमियों को भी अपना नेता मानने के लिये तैयार हो जाते हैं। माना, उन्हें धर्म पर श्रद्धा नहीं; माना, वे गो भक्त नहीं; परंतु इस समय 'गोहत्या' का प्रश्न एक सांप्रदायिक प्रश्न नहीं रहा। जिस समय एक सिख झटका करता या एक हिंदू सुअर को मारता है, तो मुसलमानों को क्यों बुरा लगता है ? उनको पूरा अधिकार है, यदि कोई मुसलमान ऐसा करे, तो उसे रोकें।

परंतु किसी हिंदू या सिख को रोकने का उन्हें क्या अधिकार है ? इसका वास्तविक कारण यह है कि मुसलमानों का आतंक हम पर छा गया है। जिस स्थान पर हिंदू उनका आतंक नहीं मानते, वहाँ मुसलमान इकट्ठे होकर उनके बाल-बच्चों और स्त्रियों पर आक्रमण करके, उनके घरों को लूटकर उन पर अनुचित आतंक जमाने की चेष्टा करते हैं। हम गोहत्या रोक नहीं सकते। न मुसलमान हमारे रोके रुकेंगे, और न अँगरेज़; परंतु गऊ को सजाकर, उसका जुलूस निकालकर मारने में एक विशेष रहस्य है। यह एक सांप्रदायिक प्रश्न नहीं है। मुसलमानों का अभिप्राय ऐसा करने से यह है कि या तो हिंदुओं के जातीय भाव का समूलोच्छेदन कर दिया जाय, या उनके धन-दौलत और स्त्री-बच्चों पर हाथ साफ़ करके उन्हें निर्बल बना दिया जाय। यह एक राजनीतिक प्रश्न है, जिसे हमारे कई राजनीतिज्ञ नेता समझने में असमर्थ हैं।

स्वराज्य हमारा उद्देश है, और उसके लिये हिंदू-मुसलिम एकता आवश्यक है, इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता। तीसरे क़दम पर आकर नीति में भेद पड़ जाता है। कांग्रेस हिंदू-मुसलिम एकता का एक मार्ग बनाती है, और हिंदू-संगठन दूसरा। हिंदू-संगठन स्वराज्य का विरोधी नहीं है, और हिंदू-मुसलिम एकता के लिये वह दूसरा मार्ग उपयुक्त समझता है। संगठन का मतलब है—एक लड़ी में पिरोए जाना। जब तक हिंदू ऐसा नहीं करते, न तो वे आपस में एक हो सकते हैं, न मुसलमानों से उनकी एकता हो सकती है और न वे अपनी रक्षा के लिये नाशक शक्ति का विरोध कर सकेंगे। जिस समय तक हिंदू संगठित न होंगे, वे किसी काम के योग्य न बन सकेंगे। मुसलमान पहले ही संगठित थे, उनकी रही-सही निर्बलता को ख़िलाफ़त के आंदोलन ने दूर कर दिया है। कांग्रेस सदा से ही मुसलमानों का पक्षपात करके उन्हें अपने साथ मिलाने की चेष्टा करती रही है। यह भी एक प्रकार रहस्य है कि आरंभ में कांग्रेस

जहाँ-तहाँ से दस-पाँच मुसलमानों को रिश्वत देकर साथ मिलाए रखने की चेष्टा करती थी। मुसलमान आरंभ में कांग्रेस के साथ थे, परंतु जब सरकार ने देखा कि कांग्रेस उनके हाथों से निकली जा रही है, तो उन्होंने मुसलमानों को बहका दिया कि उनका हित सरकार के साथ रहने में ही है। सर सैयद अहमद ने यह उपदेश देकर मुसलमानों को कांग्रेस से पृथक् कर दिया, परंतु हिंदू-नेता उन्हें सदा ही साथ मिलाए रखने के प्रयत्न में लगे रहे, और इसीलिये महात्मा गांधी ने भी ख़िलाफ़त को कांग्रेस के साथ मिलाया। ख़िलाफ़त का स्वराज्य से कोई संबंध न था, केवल स्वराज्य-प्राप्ति में मुसलमानों को साथ मिलाने के लिये इस काम को कांग्रेस ने हाथ में लिया। ख़िलाफ़त का यह उद्देश्य था कि यदि अँगरेज़ और उनके साथी टर्की को दबा लेंगे, तो बग़दाद का भी बहुत-सा प्रदेश उनके अधीन हो जायगा, और अरब तथा ईरान भी उनके पंजे के नीचे आ जायँगे। इससे अँगरेज़ों की शक्ति एशिया में बहुत अधिक बढ़ जायगी, और भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करना और भी कठिन हो जायगा। इस युक्ति में सत्य अवश्य है; परंतु इसका प्रभाव हमारी अवस्था पर नहीं पड़ता। कारण, न तो कांग्रेस के लिये बल से स्वराज्य प्राप्त करना संभव है, और न उसकी नीति ही ऐसी है। महात्मा गांधी सत्याग्रह की नीति से केवल चरित्र-बल द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। इस अवस्था में बग़दाद आदि के अँगरेज़ों के हाथों में चले जाने से हमें कोई हानि न थी। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो गया कि ख़िलाफ़त-आंदोलन की सहायता करना केवल मुसलमानों को साथ मिलाकर रखने का प्रयत्न था।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों की सहानुभूति भारत से बाहर चली गई, और उनमें मज़हबी असहिष्णुता का उद्वेग अधिक बढ़ गया। कांग्रेस के स्वयंसेवक स्वराज्य और देश के लिये

जेलख़ाने गए; परन्तु ख़िलाफ़त के स्वयंसेवक केवल मज़हबी जोश के कारण ख़िलाफ़त के लिये जेलख़ाने गए। खिलाफ़त और जमैयतुल उलमा के अधिवेशन कांग्रेस के साथ होते रहने से कांग्रेस पर उनका अनुचित प्रभाव पड़ता रहा है। मुसलमान ख़िलाफ़त के उद्देश से जाते और कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हो अपना काम भी निकाल लेते। कांग्रेस की सहायता से जहाँ दूसरे इसलामी देशों के सम्मान और अधिकार की रक्षा हुई, वहाँ इस देश में भी मुसलमानों का संगठन सुदृढ़ हो गया, जो कि पीछे हिंदू काफ़िरों के विरुद्ध प्रयोग में आने लगा। मुसलमानों का अपना संगठन कांग्रेस के बाहर होने से उनके अपने सांप्रदायिक नेता भी बन गए। जो नेता ख़िलाफ़त के प्रधान इत्यादि चुने जाते थे, उनका प्रभुत्व भी कांग्रेस को मानना पड़ता था, और इनकी इच्छा के विरुद्ध चलना कांग्रेस के लिये असंभव हो गया। इसके साथ ही कांग्रेस में ऐसे आत्मसम्मान-हीन हिंदू-नेता उत्पन्न हो गए, जो इन्हें प्रसन्न बनाए रखना ही अपना उद्देश समझने लगे।

कोहाट की भयंकर घटना हुई। उसमें हिंदुओं को सरे-बाज़ार लूटा गया, उन पर अत्याचार किए गए। इस पर भी मुसलमान समाचार-पत्रों और नेताओं का कहना है कि मुसलमानों पर अत्याचार हुआ। धन्य है! चतुरता हो तो ऐसी हो, जिसे समझना भी कठिन हो जाय। इस घटना से हमारे मुख्य नेता महात्मा गांधीजी के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। उन्हें निश्चय हो गया कि उनकी नीति ने हिंदुओं को हानि पहुँचाई है। वह प्रायश्चित्त करके प्राण देने के लिये तैयार हो गए। उन्होंने कहा—यदि उनके प्राण देने से भी कोहाटी भाइयों को आश्वासन मिल जाय, तो वह उसके लिये भी तैयार हैं। महात्माजी की मृत्यु से कोहाटी भाइयों को अत्यंत शोक ही होगा; उन्हें तो आश्वासन तभी होगा, जब महात्माजी संपूर्ण हिंदू-जाति

को सबल और सगठित करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे कोहाट की-जैसी घटनाएँ अन्य स्थानों पर न हो सकें। इसके लिये हिंदुओं में शारीरिक तथा मानसिक बल उत्पन्न होने की आवश्यकता है। महात्माजी ने ख़िलाफ़त का काम करके मुसलमानों में संगठन उत्पन्न कर दिया है। वह संगठन द्वारा हिंदुओं को भी बलवान् बनाकर उनमें जीवन डाल सकते हैं। जब तक हम संगठित न होंगे, मुसलमानों तथा अँगरेज़ों का चरित्र-बल द्वारा मुक़ाबला न कर सकेंगे, और न स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। स्वराज्य-प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन यही है कि महात्माजी सब नेताओं को साथ लेकर हिंदुओं की निर्बलता का उपाय करें। यदि वह ऐसा नहीं करना चाहते, तो उन्हें कम-से-कम कांग्रेस पर से मुसलमानों का आतंक उठा देना चाहिए। ख़िलाफ़त-कानफ़्रेंस चाहे जहाँ कहीं हो, परंतु कांग्रेस के साथ नहीं। इससे स्पष्ट हो जायगा कि वे कौन-से मुसलमान नेता हैं, जिन्हें कांग्रेस से सहानुभूति है, और इसके काम के लिये इतनी दूर जाने को तैयार हैं। यही एक ढंग है, जिससे मुसलमान अपने सांप्रदायिक विचारों को छोड़कर भी कांग्रेस में आने के लिये तैयार होंगे। कांग्रेस को चाहिए कि ख़िलाफ़त और संगठन, दोनों को एक समान महत्त्व दे।

एक प्रश्न और है। क्या कांग्रेस के हिंदू-नेता और कार्य-कर्ता संगठन के कार्य में भाग ले सकते हैं? हमें तो यह प्रश्न ही निरर्थक प्रतीत होता है। जब मुसलमानों के नेता केवल वे ही लोग हो सकते हैं, जो मुसलमानों के अधिकारों के रक्षक तथा पक्के मुसलमान हैं, तो फिर हिंदुओं को संगठन का काम करने में क्या आपत्ति हो सकती है? इस प्रकार के विचार का उठना ही हमारी कायरता का प्रमाण है। हिंदू अभी तक ऐसे विचारों को सहन करते आए हैं। हिंदुओं को चाहिए, उनके जो नेता कांग्रेस में हैं और हिंदू-जाति के हितों की चिंता नहीं करते, उन्हें अपने नेता मानने से इनकार कर दें,

और उनके स्थान में जाति के शुभ-चिंतक नेता चुनकर भेजें। नेता का कर्तव्य जाति को अपने विचारों पर चलाना नहीं है, अपितु उसे जाति के विचारों का प्रतिनिधि होना चाहिए। कांग्रेस के हिंदू-नेताओं को, मुसलमान नेताओं की भाँति, अपनी जाति के हित का ध्यान रखना चाहिए। हिंदू-नेता अपनी जातीयता त्याग मुसलमानों से एकता करने के लिये तैयार हो सकते हैं, परंतु जाति इसके लिये तैयार नहीं है। नेता उसी अवस्था में दृढ़ एकता स्थापित कर सकते हैं, जब वे जाति के सच्चे प्रतिनिधि होंगे।

क्या संगठन एक सांप्रदायिक आंदोलन है ?

मैं जब कई सज्जनों के हृदय में कांग्रेस के लिये बहुत उत्साह देखता हूँ, और वे हिंदू-सगठन को एक सांप्रदायिक आंदोलन कहकर इसे अपनी तथा अन्य लोगों की दृष्टि में नीचा दिखाना चाहते हैं, तो मुझे बहुत आश्चर्य होता है, मैं चाहता हूँ, हम एक वार इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार कर लें। ज्यों ही हम इस प्रश्न की ओर दृष्टि-पात करते हैं, यह बात हमारे सम्मुख स्पष्ट हो जाती है कि भारत में सामाजिक परिस्थिति उन सब देशों से विचित्र है, जिन्होंने राजनीतिक आंदोलन द्वारा देश में राष्ट्रीयता की स्थापना कर स्वराज्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। हमें संसार के इतिहास में भारतवर्ष की समता अन्य कहीं नहीं मिलेगी। अन्य जातियों पर किन्हीं विदेशी शक्तियों ने प्रबलता प्राप्त कर उन्हें अधीन कर लिया, और अधीन जातियाँ थोड़े या अधिक समय तक अपनी स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करती रहीं। यह लड़ाई सीधी-सादी थी, इसमें किसी प्रकार का हेर-फेर न था। शत्रु उन पर भाँति-भाँति के अत्याचार कर उन पर अपना अधिकार जमाए रखना चाहते थे, और पराधीन जातियाँ सब प्रकार की क्रूरताओं तथा अत्याचारों को सहन करके उन विदेशी शक्तियों का मुक़ाबला करना अपना कर्तव्य समझती थीं। जिस परिणाम में अत्याचारियों के अत्याचार बढ़ते, उनके बलिदान भी उसी परिमाण में बढ़ते जाते थे। परंतु भारत में परिस्थिति ऐसी नहीं रही। जिस समय भारत मुग़ल-शासन की अधीनता में था, और देश के अनेक भागों में हिंदुओं ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिये सिर उठाना आरंभ किया, तो उन्होंने अपने विदेशी मत और सभ्यता

को इस देश में फैलाकर इस देश की पराधीनता की समस्या को अधिक पेचीदा कर दिया। इस देश में हिंदुओं के साथ-ही-साथ एक और ऐसी शक्ति की स्थापना हो गई, जिसने अरबी मत और सभ्यता को अपनाकर हिंदुओं को पराधीन रखना अथवा उनके अस्तित्व को मिटा देना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। यद्यपि इसलाम का शासन इस देश के बहुत-से भागों से उठ चुका था, परंतु इतना होने पर भी देश के सब भागों में मुसलमान वर्तमान थे, और उनकी संख्या प्रति दिन बढ़ती जाती थी। अँगरेज़ों के इस देश में आ जाने से उलझन और भी अधिक जटिल हो गई। अब एक जाति पराधीन और दूसरी जाति शासक न होकर दोनों ही अँगरेज़ो के अधीन हो एक दूसरी को मिटा देने का प्रयत्न करने लगीं। इससे जहाँ अँगरेज़ों के लिये इस देश का शासन सुगम होता गया, वहाँ देश में एक राष्ट्र का निर्माण कठिन और असंभव हो गया। इस देश के इतिहास में केवल दो ही ऐसे समय आए हैं, जब हिंदू और मुसलमानों ने मिलकर स्वतंत्रता-प्राप्ति का उपाय किया है। पहली बार मरहठा वीर नाथाजी तथा हैदरअली ने मिलकर देहली और निज़ाम को भी अपने साथ मिलाकर अँगरेज़ों को इस देश से निकाल देने का प्रयत्न किया था। दूसरी बार यह घटना १८५७ के विप्लव के समय हुई। यद्यपि इन दोनों अवसरों पर दोनों जातियों में एकता हो गई थी, परंतु मुझे इस एकता की जड़ में मुसलमानों की शासन करने की इच्छा और आशा दबी दीख पड़ती है। उदाहरण के लिये यदि १८५७ के विप्लव के समय हिंदू बहादुरशाह को शाहनशाह प्रसिद्ध न कर देते, तो मुसलमान उनके साथ न मिलते। मुसलमान सदा इसी शर्त पर हिंदुओं के साथ मिलकर काम करने को तैयार रहते हैं कि वे इस देश में नए सिरे से इसलाम का प्रभुत्व स्थापित करने में उनकी सहायता करें।

वर्तमान समय में भी इस समस्या की उलझन का यही कारण है। मुसलमानों के हृदय में यह विचार जड पकड चुका है कि वे इस देश को जीत कर कई सौ वर्ष यहाँ शासन कर चुके हैं। सो अब यदि किसी प्रकार अँगरेज़ इस देश मे चले जायँ, तो उन्हें फिर हिंदुओं पर वही प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करना चाहिए। और, यदि ऐसा न हो मके, तो मुसलमानों का हित इस देश में अँगरेज़ी शासन के स्थापित करने में ही है; क्योंकि अँगरेज़ मुसलमानों को तरह-तरह के अधिकारों का प्रलोभन देकर हिंदुओं से सदा पृथक् रखते आए हैं। इमका सवमे वडा प्रमाण यह है कि मुमलमानों में केवल वही आंदोलन सफल हो सकता है, जो उनके लिये विशेष अधिकार और सहूलियतें प्राप्त करने की चेष्टा करे। इसके विना न ख़िलाफ़त और न मुसलिम-लीग ही सफल हो सकती है। मुसलमानों को केवल अपने विशेष अधिकारों से ही मतलव है, उन्हें देश की कोई चिंता नहीं। मैं कांग्रेस पर मुसलमानों के इस अनुचित प्रयत्न के आगे सिर झुकाने का दोषारोपण करता हूँ। कांग्रेस के मुसिलम नेताओं का प्रयत्न भी मुसलमानों की इस प्रवृत्ति के अनुकूल रहा है। मैं यह नहीं कह सकता कि युद्ध के समय अली-भाइयों की नज़रवंदी के लिये सरकार के पास पर्याप्त प्रमाण थे या नहीं, परंतु यह तो प्रकट सत्य है कि युद्ध के आरंभ में मुसलमानों की दृष्टि कावुल की ओर लगी हुई थी। अपनी गिरफ़्तारी से पहले मुझे एक वड़े मुसलमान नेता से मिलने का अवसर मिला। मैंने उनसे पूछा, यदि इस युद्ध में अँगरेज़ पराजित हो जायँ, तो भारत की क्या अवस्था होगी ? संभवतः यहाँ जर्मनी का अधिकार हो जायगा। उन्होंने उत्तर दिया, भारत केवल अमीर की सहायता से ही स्वतंत्र हो सकता है। इस पर मैंने कहा—यदि स्वतंत्रता इस प्रकार ही होती हो, तो हिंदू नेपाल के राजा को वुलाने की चेष्टा करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया, मैं नेपाल की

शक्ति के विषय में कुछ नहीं जानता। अफ़ग़ान हों या टर्की, मुसलमानों की दृष्टि मुसलमानों से आगे बढ़ना नहीं पसंद करती। कांग्रेस यदि एकता चाहती है, तो उसे मुसलमानों के हृदय से इस भाव को निकालने का प्रयत्न करना चाहिए, और इसका यह उपाय है कि कांग्रेस ख़िलाफ़त और मुसलिम-लीग को कोई परवा न करे। जो मुसलमान कांग्रेस में सम्मिलित हों, एक हिंदोस्तानी के नाते से आवें उनके सम्मुख मुसलमानों के अधिकारों की चिंता नहीं, बल्कि मनुष्य के अधिकारों की चिंता हो। वे एक हिंदोस्तानी होने का गौरव और अभिमान रखते हों। उनके सम्मुख स्वराज्य का ऊँचा आदर्श हो। इसे ही हम दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि प्रत्येक हिंदोस्तानी को बिना किसी सांप्रदायिक विचार के वे समग्र अधिकार मिलने चाहिए, जिस प्रकार की अन्य उन्नत देशों की प्रजा को प्राप्त हैं। आप कहेंगे, मुझे मुसलिम-लीग की समालोचना न कर हिंदू-संगठन के पक्ष में युक्तियाँ देनी चाहिए थीं। परंतु अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये इन सब बातों का लिखना आवश्यक ही था। अब मैं यह सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा कि हिंदू-संगठन एक सांप्रदायिक आंदोलन नहीं है। कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, जो संगठन द्वारा हिंदुओं के लिये विशेष अधिकार प्राप्त करने की इच्छा रखता हो। हम चाहते हैं कि इस देश में मुसलमानों को वे सब अधिकार प्राप्त हों, जो हिंदुओं को या किसी दूसरी जाति को प्राप्त हैं। इस विचार से हिंदू-संगठन कांग्रेस के साथ-साथ चल सकता है। हम चाहते हैं कि इस देश में किसी भी जाति या संप्रदाय के साथ विशेष रिआयत नहीं, सब मनुष्यों के अधिकार बराबर हों, और सब में भ्रातृभाव हो, सब परस्पर एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करें, अपने अधिकारों की रक्षा के साथ-ही-साथ वे देश के प्रति भी अपने कर्तव्य का पालन करें।

प्रश्न उठ सकता है यदि हिंदुओं का यही उद्देश्य है, तो संगठन की क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर यह है कि इस देश की अन्य जातियाँ हिंदुओं को पीछे छोड़कर स्वयं अधिक अधिकार हथियाना चाहती हैं। उनके हृदयों में हिंदुओं के प्रति ईर्षा और संदेह घर कर गया है, उनका विश्वास है कि उनका हित हिंदुओं को निर्बल कर रखने में ही है। उनका यह विचार और प्रयत्न अनुचित है। इसके प्रतिकार का उपाय यही है कि हिंदू बलवान् और सगठित हो जायँ। हिंदू-संगठन तथा अन्य संगठनों में भेद यह है कि अन्य लोग विशेष अधिकार प्राप्त करने के लिये बलवान् होना चाहते हैं, और हिंदू समान अधिकार और समानता के सिद्धांतों की रक्षा के लिये बलवान् होना चाहते हैं। हिंदू-सगठन में सांप्रदायिकता का विचार नहीं है; क्योंकि यह विशेष अधिकार नहीं माँगता। यह केवल समानता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। अन्य जातीय तथा सांप्रदायिक आंदोलन दूसरों को पीछे छोड़ अपने लिये अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा में हैं; परंतु हिंदू-संगठन देश के राष्ट्रीय हित के लिये प्रयत्न करता है। इसे सांप्रदायिक कहना भूल है।

यदि भारत की अन्य सब जातियाँ अपने-अपने निजी हित में लगी रहें, तो कांग्रेस उन पर भरोसा और विश्वास नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में हिंदू-संगठन ही एक ऐसा आंदोलन है, जो कांग्रेस के साथ काम करके इसे सफल बना सकता है। परतु कांग्रेस सभी जातियों की साझी सस्था होने के कारण हिंदुओं को सबल बनाने के लिये कुछ नहीं कर सकती। कांग्रेस की वास्तविक उन्नति हिंदुओं के सबल होने पर ही निर्भर है; क्योंकि केवल हिंदू ही आरंभ से कांग्रेस के उद्देश्य से सहानुभूति रखते आए हैं। सभवतः आरंभ में हिंदू-संगठन से कांग्रेस के काम में थोड़ा-बहुत विघ्न पड़ेगा; क्योंकि हिंदुओं का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जायगा, परतु अंत में कांग्रेस को

इससे लाभ ही होगा। हिंदू सबल होकर कांग्रेस का काम अधिक अच्छी तरह करेंगे। हिंदू आरंभ से कांग्रेस का काम करते आए हैं, उन्होंने इसके लिये सबसे अधिक बलिदान किया है। निस्संदेह मुसलमानों ने क़ुर्बानी की है, परंतु वह ख़िलाफ़त के लिये थी। यदि ख़िलाफ़त को कांग्रेस से निकाल दिया जाता, तो बहुत कम मुसलमान कांग्रेस का साथ देते।

यह भी कहा जा सकता है कि हिंदुओं और मुसलमानों के पृथक्-पृथक् काम करने की क्या आवश्यकता है? दोनों की कांग्रेस साझी संस्था है, इसी में दोनों को मिलकर काम करना चाहिए। इसके उत्तर में मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि पिछली घटनाओं को देखते हुए वर्तमान अवस्था में दोनो का साथ मिलकर काम करना कठिन जान पड़ता है। इसमें बड़ी रुकावट हमारे समाचार-पत्र हैं, जो सदा ही दोनों दलों को भड़काने का प्रयत्न करते रहते हैं।

हिंदुओं का धर्म आर्य-जाति का धार्मिक विश्वास है, इसलाम सैमेटिक मज़हब की एक शाखा है। हिंदुओं की सभ्यता आर्य-जाति की सभ्यता है, और मुसलमानों की सभ्यता अरब से आई है। हिंदुओं के नाम इस देश के प्राचीन आर्य नामों के ढंग पर हैं, परंतु मुसलमानों के नाम अरबी हैं। हिंदुओं का रूप और वेष-भूषा आर्य ढंग पर है, मुसलमानों की आकृति-प्रकृति अरबी ढंग पर है। हिंदुओं का हृदय इस देश के प्राचीन निवासी आर्यों के कृत्यों से गौरवपूर्ण है, मुसलमान अरब और फ़ारस के इतिहास पर अभिमान करते हैं।

यह ठीक है कि सारे मुसलमान हिंदू नहीं बन सकते, परंतु फिर भी दोनों जातियों में एकता हो सकती है, और इसका उपाय यह है कि मुसलमान समझ लें, उनका सांसारिक हित इसी में है कि वे हिंदुओं से मिलकर रहें। यह ठीक है कि परलोक की चिंता भी आवश्यक वस्तु है, परंतु ससार में रहने के लिये सांसारिक चिंता पारलौकिक चिंता

से कम आवश्यक नहीं है। पारलौकिक हित के लिये सांसारिक अवस्था का अच्छा होना परमावश्यक है। जिस जाति की सांसारिक अवस्था अच्छी नहीं, वह परलोक क्या सुधारेगी। इसलिये सब सांप्रदायिक विभिन्नताओं के रहते हुए भी हिंदुओं और मुसलमानों को एक होकर रहना होगा।

अंत में मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि यदि दोनों जातियों को मिलाकर एक करना होगा, तो हिंदू तो मेल के लिये तैयार हो जायँगे; क्योंकि उनका मत उदारता और सहिष्णुता की शिक्षा देता है, और वे सब संप्रदायों को समान दृष्टि से देखते हैं। इसमें यदि किसी को आपत्ति हो सकती है, तो केवल मुसलमानों को जिनके मत में मुसलमानों के अतिरिक्त और सबको काफ़िर कहा गया है। मिलाप के लिये दोनों ओर से इच्छा और प्रयत्न होना चाहिए। अकेले हिंदुओं के आगे बढ़ने से कुछ नहीं हो सकता। मुसलमानों की इच्छा के बिना ही यदि हिंदू एक होना चाहें, तो इसका मतलब यह है कि हिंदू अपना अस्तित्व मिटाकर एक जाति बना दें। हिंदू-संगठन इसके लिये तैयार नहीं।

क्या हिंदू-संगठन होना संभव है ?

मुझे स्वयं हिंदू-संगठन में तो कोई संदेह नहीं है, प्रत्युत मुझे तो अपने देश के सब दुःखों और कष्टों का उपाय इसी में ही दीख पड़ता है। हमारे देश के नेता चाहे किन्हीं शब्दों से इस विषय में अपने मंतव्य को प्रकट करें, मुझे तो इसमें संदेह और शंका के लिये कोई स्थान नहीं दीख पड़ता। मेरे लिये इससे अगला कदम चिंता और सोच-विचार का है। प्रश्न उठता है, 'क्या हिंदू-संगठन के लिये कोई आशा भी है?' इस प्रश्न का उत्तर मुझे स्पष्ट नहीं दिखाई देता। इस विषय पर विचार करते समय मेरी आँखों के आगे निराशा का अंधकार छा जाता है, और एक प्रकार की बेचैनी-सी हो जाती है, आगा-पीछा कुछ नहीं दीखता। मैं हिंदुओं में संगठन करने और उनमें जीवन डालने का कोई मार्ग ढूँढना चाहता हूँ; परंतु जिस ओर देखता हूँ, मुझे दरवाज़ा बंद ही दिखाई देता है। सब ओर कठिनाई ही दीखती है। मैं इस कठिनता को बता सकता हूँ; परंतु इसका कोई उपाय मुझे नहीं दीखता। मैं सैकड़ों बार कह चुका हूँ कि हिंदू-संगठन इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि हिंदू प्रत्येक गाँवों और क़सबों में सभाएँ स्थापित करके हिंदू-महासभा के निश्चय के अनुसार अपने को एक माला में पिरो दें। जिस समय माला के मनके अलग-अलग होते हैं, उनका कोई अस्तित्व नहीं होता; परंतु जब वे एक माला में पिरो दिए जाते हैं, तो एक अत्यंत पवित्र वस्तु बन जाते हैं। जिस स्थान पर जाकर देखो, हिंदू सब जगह एक संगठन की आवश्यकता का अनुभव करते हैं, और इसके लिये तैयार हैं; परंतु जब उनसे काम करने के लिये कहा जाता है, तो कोई व्यक्ति आगे

बढ़कर उत्तरदायित्व को अपने सिर नहीं लेता। मुसलमान दिन में कई वार मसजिद में इकट्ठे होते हैं; हिंदुओं के लिये दिन में एक वार कैसा, सप्ताह और महीने में भी एक बार एकत्र होना कठिन है। इस-का कारण स्पष्ट है। हिंदुओं में स्वार्थ और पैसे का लोभ बहुत अधिक बढ़ गया है, और उन्हें किसी जातीय काम में समय देना दूभर जान पड़ता है। इस स्वार्थ और पैसे के लोभ को कैसे इनके दिल से निकालकर, इसके स्थान में जाति-हित का भाव भर दिया जाय, यह एक कठिन प्रश्न है। इसका मुझे कोई हल नहीं दिखाई देता। एक हल तो मैं बता सकता हूँ कि वृद्ध और नवयुवक अपनी आव-श्यकताओं को कम कर, स्वार्थ को त्याग जाति का काम करने के लिये मैदान में निकल आवें।

बलिदान का बीज बोने से ही जाति की स्वार्थपरता की व्याधि दूर हो सकती है। जब गुरु गोविंदसिंह ने कायर और निर्बल हिंदुओं में से क्षत्रिय पैदा करने का निश्चय किया, तो उन्होंने इसी सिद्धांत को अपना पथ-दर्शक बनाया, और अपने अनुयायियों को इसी मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। गुरु गोविंदसिंह ने सेवा-धर्म को नीचे से उठाकर चोटी का धर्म बना दिया। सेवा से ही मनुष्य में निस्स्वार्थता आ सकती है। यही भाव थोड़ा और ऊँचा उठकर बलिदान का रूप धारण कर लेता है। गुरुओं और उनके अनुयायियों ने जो बलिदान किए हैं, वे संसार के इतिहास में सदा अमर रहेंगे।

यह समय हिंदुओं के लिये गुरुओं के समय से भी बढ़कर भयानक है। हिंदुओं का अस्तित्व इस समय संशय में है; परंतु हिंदू अमीर अपना रुपया छोड़ने के लिये तैयार नहीं। वृद्ध अपनी गृहस्थी नहीं छोड़ सकते। नवयुवकों के लिये अपनी आशाओं को छोड़ना कठिन है। जिस समय मैं अपनी निराशा प्रकट करता हूँ, मुझसे कहा जाता है—"प्रचार की आवश्यकता है। ज्यों-ज्यों विचार फैलेंगे, लोगों में जाति

के लिये सहानुभूति उत्पन्न होगी।" मैं कहता हूँ, आर्य-समाजों के लिये प्रचार की आवश्यकता थी; क्योंकि उन्हें नए विचारों को जनता के सम्मुख रखना था। हिंदुओं को उनकी निर्बलता बताकर, उन्हें एकता के लाभ समझाने के लिये प्रचार की क्या आवश्यकता है? ऐसा कौन हिंदू है, जो अपनी जातीय निर्बलता के कारणों और परिणामों को नहीं जानता? सोते हुए और बेसमझ आदमी को जगाकर समझाया जा सकता है; परंतु जो जागता है और समझ-बूझकर बेपरवाह बना हुआ है, उसे कौन समझा सकता है। मुझसे कहा गया, सभाएँ बनाने के लिये प्रचारकों की आवश्यकता है। सभा के पास कोई प्रचारक न था, इसलिये मैंने स्वयं एक दौरा किया। मेरा अच्छा स्वागत हुआ। मेरे जाने पर जोश भी खूब दिखाया गया, और सभाएँ भी स्थापित हो गईं; परतु फिर क्या हुआ? मुझे इन सभाओं का होना या न होना बराबर मालूम होता है। यदि प्रचारक या उपदेश रखने से इतना ही काम होना है, तो मैं पूछता हूँ, इससे क्या बनेगा, और इसकी क्या आवश्यकता है? सब स्थानों के हिंदुओं को, चाहे वे आर्य-समाजी हों या सनातन-धर्मी, महीने में एक बार एकत्र होकर अपने जीवन का प्रमाण देना चाहिए। इस काम के लिये प्रत्येक हिंदू प्रचारक है। आश्चर्य यह है कि इतने प्रचारक होते हुए भी कहीं कुछ काम होता दिखाई नहीं देता। दुःख यह है कि छोटे-छोटे नगरों और क़सबों में भी कोई मनुष्य काम करनेवाला पैदा नहीं होता।

मेरे पास पत्र आते हैं कि हिंदू-सभा सो गई, हिंदू-सभा कुछ काम नहीं करती। य लोग एक पत्र लिखकर और एक आने का टिकट ख़र्च कर अपने कर्तव्य से उऋण हो जाते हैं; परतु दूसरों से बहुत कुछ आशा रखते हैं। केवल इतना ही नहीं, बहुत-से महानुभाव अपने ऐसे विचारों को समाचार-पत्रों में छपवा देते हैं। जहाँ उनकी

चिट्ठी पत्र में छपी कि उनका कर्तव्य पूरा हुआ। कई संपादक हिंदू-संगठन के विषय में समाचार-पत्रों में ख़ूब उत्तेजनापूर्ण लेख लिखते हैं। इससे शोर तो बहुत मचता है, परंतु काम कुछ नहीं होता। मैं इन सज्जनों की सेवा में निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह हमसे छिपा नहीं कि संगठन का काम कुछ नहीं हो रहा, परंतु ये सभाएँ आपकी ही बनाई हुई हैं, और इनमें प्रायः ऐसे ही आदमी भरे हुए हैं, जो दूसरों को मार्ग दिखाना ही पसंद करते हैं, स्वय उस पर चलना पसद नहीं करते। इस प्रकार की समालोचना जाति के लिये हानिकारक है। जिन महानुभावों के हृदय में ऐसी समालोचना करने की इच्छा उत्पन्न होती है, उनसे मेरी प्रार्थना है कि केवल समालोचना ही न कर सभा के बनाने में भी कुछ सहायता दें। चिट्ठियाँ लिखने की अपेक्षा वे लोगों को उत्साहित करें। थोड़ा समय हुआ, मुझे एक महाशय ने दो फ़ुल्सकेप काग़ज़ों का एक लंबा पत्र लिखा। जिसमें आपने लिखा, "हिंदू-जाति की उन्नति का एक ही उपाय दंगल के अखाड़े स्थापित करना है। हिंदू-सभा ने इस विषय का प्रस्ताव पास करके छोड़ दिया, शोक है काम कुछ नहीं हुआ।" प्रस्ताव पर काम न होने का कारण यह था कि स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण मैं लगभग तीन-चार मास के लिये लाहौर से बाहर चला गया था। मैं इन महाशय से कहना चाहता हूँ कि बहुत अच्छा होता, यदि वह अपना और मेरा समय नष्ट न कर इस संबंध में कुछ क्रियात्मक काम करते। हिंदू-सभा यह नहीं करती, वह नहीं करती, ऐसा लिख देने से कुछ नहीं बन सकता। इस प्रकार की समालोचना करने का अधिकार उसी व्यक्ति को है, जो संगठन के लिये स्वयं कुछ करता हो।

कुछ लोग पूछते हैं, हिंदू-सभाएँ स्थापित कर वे क्या करें ? मैं इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। सभाएँ

समय-समय पर हमें सावधान करती रहती हैं। हिंदू-महासभा ने यह निर्णय किया है कि हिंदू-सभाएँ स्थान-स्थान पर विधवाओं की रक्षा के लिये आश्रम स्थापित करें। जिन लोगों को जम्मू, चंबे और कांगड़े के इलाके के विषय में कुछ पता है, वे जानते हैं कि प्रतिवर्ष किस तरह सैकड़ों देवियाँ विधर्मियों के हाथों में पड़ती हैं। परंतु हिंदुओं के पत्थर-दिलों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्या इन स्थानों की हिंदू-सभाओं को यह बताने की आवश्यकता है कि इस विषय में उनका क्या कर्तव्य है? किसी जाति में स्त्रियों की संख्या का कम होना उस जाति के विनाश का कारण होता है। मुसलमान इस रहस्य को ख़ूब अच्छी तरह समझते हैं, और वे शनैः-शनैः हिंदुओं के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसका रहे हैं। मैं नहीं कह सकता कि हिंदुओं को कब सुध आवेगी। पंजाब हिंदू-सभा ने यह निश्चय किया है कि भविष्य में स्कूल खोलने के स्थान में हिंदू-बालकों की शारीरिक अवस्था सुधारने के लिये दंगलों के अखाड़े स्थापित किए जायँ, और लाहौर में एक केंद्रीय अखाड़ा बनाया जाय। यह दूसरा काम है, जो हिंदू-सभाएँ कर सकती हैं। तीसरा काम हिंदू-सभाएँ हिंदू-मंदिर और तीर्थ-सुधार का अपने हाथ में ले सकती हैं। परंतु यह काम तभी हो सकता है, जब हिंदू-सभाएँ दृढ़ हो जायँ, और वे हिंदू-समाज की प्रतिनिधि समझी जाने लगें।

सबसे बड़ा काम जो हिंदू-सभाओं के सम्मुख है, वह अछूतोद्धार का है। मेरा विचार है कि हिंदुओं का भला इन्हीं अछूतों के उद्धार से होगा। प्रकृति का नियम विचित्र है। जो जातियाँ संपन्न और प्रभावयुक्त होती हैं, वे भोग-विलास में पड़कर अपनी रक्षा के लिये असमर्थ हो जाती हैं। शारीरिक निर्बलता के कारण इनकी संतान भी कम होने से इनकी संख्या घट जाती है। ऐसी अवस्था में निचली श्रेणी के लोग ही ऊपर आकर जाति की रक्षा करते हैं।

पुराने समय में राजपूताने में सैनिक लोगों में से अग्नि-कुल के राजपूत इसी प्रकार उत्पन्न हुए थे। दक्षिण में मरहठे भी इसी प्रकार उत्पन्न हुए। जो मरहठे एक समय शूद्र समझे जाते थे, वे एक दिन हिंदू-धर्म के उद्धारक बने। उन्हीं की स्थापित की हुई रियासतें आज भी चली आ रही हैं। पंजाब में गुरु गोविंदसिंह ने जिन जाटों को सिख बनाया, वे भी इसी श्रेणी में से थे। जो लोग ग़रीब होते हैं, और भोग-विलास में लिप्त नहीं होते, उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी होती है, और उनमें बलिदान का भाव भी अधिक होता है। संकट के समय ये लोग आगे आ जाते हैं, और विलासी लोग पीछे हट जाते हैं। मुझे यदि संगठन की आशा है, तो इन अछूतों से ही।

पढ़नेवाले विस्मित होंगे, परंतु मैं स्पष्ट कह देता हूँ कि जिन अछूतों से हम घृणा करते हैं, और जिन्हें अपने कुओं पर चढ़ने नहीं देते, एक दिन वे ही आकर हमारी रक्षा करेंगे। अछूतोद्धार हिंदू-संगठन का मुख्य अंग बन जायगा। हिंदू-सभा सब हिंदुओं की प्रतिनिधि है, इसलिये यह काम हिंदू-सभाओं को ही करना होगा। संगठन के विना अछूतोद्धार का कोई लाभ नहीं, और न इसमें सफलता ही हो सकेगी। निराशा का बड़ा कारण यह है कि हमारे परोसी मुसलमान अपनी जाति को उन्नत और सबल बनाने का मुख्य साधन जानते हैं, उनका सबसे बड़ा धर्म अपने संप्रदाय के अनुयायियों की संख्या बढ़ाना है। जब तक एक व्यक्ति हिंदू रहता है, वह डरता रहता है, उसकी आत्मा निर्बल रहती है। जिस दिन वह मुसलमान बन जाता है, उसके कान में यह मंत्र फूँक दिया जाता है कि वह मुसलमान है, उसके लिये बहिश्त का दरवाज़ा खुल गया है, और इस दुनिया में भी वह बड़े-बड़े आदमी की बराबरी कर सकता है। वह मुर्दा मनुष्य अब जीवित हो जाता है, और उसकी आत्मा में भी शक्ति आ जाती है। मुसलमान साधन की चिंता नहीं करते। यदि कोई मनुष्य धन के

लोभ से मुसलमान बनता है, तो धन से ही सही, यदि कोई दुःख देने से बनता है, तो यही सही, कोई ज़बरदस्ती से बन सकता है, तो यह भी ठीक है। जहाँ मुसलमान नए आए हुए भाई को छाती से लगाने के लिये तैयार रहते हैं, वहाँ हिंदू अपने पुराने भाइयों को भी वापस लेने में हिचकिचाते हैं। हिंदू अपने भाइयों को ढकेलना जानते हैं, उनमें अपने भाइयों को ऊँचा उठाने की शक्ति नहीं है। हिंदू उसी दिन बलवान् होंगे, और उन्नति करेंगे, तब उनमें दूसरों को अपने साथ मिलाने की वही शक्ति आ जायगी, जो उनके परोसी मुसलमानों में है।

हिंदू-संगठन का साधन

एक प्रश्न मुझसे यह पूछा जाता है कि हिंदुओं को आख़िर एक सूत्र में बाँधा कैसे जा सकता है। मैं हिंदुओं में संगठन स्थापित करना चाहता हूँ, तो इसका कोई साधन भी होना चाहिए। मैं अपने विचारों के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर थोड़े शब्दों में देना चाहता हूँ।

मैं यह बात प्रसन्नता से स्वीकार करता हूँ कि हिंदू-धर्म या मत कोई मज़हब या संप्रदाय नहीं है, और इसे मैं हिंदू-सभ्यता और हिंदुओं के लिये गौरव का कारण समझता हूँ। इसलाम और ईसाई-धर्म ने मज़हब को ही संगठन का साधन बनाया है। संसार में सबसे पहले बौद्ध-धर्म का प्रचार हुआ; परंतु बौद्ध-धर्म ने सांप्रदायिक विचारों को सामाजिक संगठन का साधन नहीं बनाया। बौद्ध-धर्म से से पूर्व यहूदी आदि संप्रदाय प्रचार का काम बिलकुल न करते थे। यहूदी आज दिन तक भी किसी अन्य संप्रदाय के मनुष्य को अपने धर्म में सम्मिलित नहीं करते। इसलाम और ईसाई धर्म धार्मिक दृष्टिकोण से यहूदी-धर्म का ही अनुकरण है। यह कह देना ऐति-हासिक दृष्टि से ग़लत नहीं समझा जायगा कि ईसाइयत में से यदि ईसा को और इसलाम में से हज़रत मुहम्मद को निकाल दिया जाय, तो शेष यहूदी-धर्म ही रह जायगा।

ईसाइयों ने यहूदी-संप्रदाय के सिद्धांतों को लेकर प्रचार करना आरंभ किया, ज्यों-ज्यों उनके हाथ में राजनीतिक शक्ति आती गई, उनका संगठन दृढ़ होता गया। ईसाइयों की उन्नति देखकर हज़रत मुहम्मद ने भी यहूदियों के आरंभिक सिद्धांतों को लेकर इसलाम में

सांप्रदायिक और राजनीतिक शक्ति उत्पन्न कर दी, और एक बलवान् शक्ति को जन्म दे दिया।

उन्नति के मार्ग में रुकावट—यह एक सत्य सिद्धांत है कि सांप्रदायिकता को सामाजिक संगठन का साधन बनाना उन्नति के मार्ग में बड़ी रुकावट उपस्थित करना है। जब तक योरप में ईसाइयों का प्राबल्य रहा, मनुष्य का मस्तिष्क चर्च के अधीन विकसित अवस्था में रहा, कोई उन्नति न हो सकी। योरप ने उन्नति के मार्ग में पहला क़दम तभी रक्खा, जब उसने धार्मिक सुधार (Reformation) द्वारा अपने मस्तिष्क को सांप्रदायिक दबाव से मुक्त कर लिया। इस समय तक योरप में राष्ट्रीय संगठन बिलकुल न था। इसी प्रकार जब तक एशिया के देश इसलाम के दबाव से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर लेते, उनके लिये किसी प्रकार की उन्नति करना सर्वथा असंभव है। योरप के देशों का रुपया इसलामी देशों को सहायता देने का यही प्रयोजन है कि वे सदा ही अपने मज़हबी उन्माद में पड़े रहें और उनकी तूती एशिया में बोलती रहे। संप्रदाय के प्रभुत्व में विचार-स्वतंत्रता होना कठिन है, इस बात का प्रमाण इसलाम और ईसाई-धर्म का इतिहास है। इन दोनों संप्रदायों ने विचार-स्वतंत्रता का नाश करने के लिये अनेक महापुरुषों के प्राण लिए और उन्हें जीता जलाया। एक बार जब किसी जाति के मस्तिष्क संप्रदाय की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, तो विचारों की स्वतंत्रता स्वयं ही नष्ट हो जाती है।

संप्रदाय सबसे पूर्व यही शिक्षा देता है कि उसकी बताई हुई दो-चार बातें ही सच हैं, और उस सचाई का प्रचार करना ही सबसे ऊँचा और आवश्यक कर्तव्य है। जो उस सत्य को स्वीकार नहीं करता, उसका जीवन पापमय है। ऐसे पापमय जीवन का अंत कर मनुष्य को पाप से बचाना चाहिए। संप्रदाय प्रत्येक विषय में अपने पाद-

रियों और मौलवियों की सम्मति को ही ठीक मानता है। जिस समाज या जाति के मनुष्य मौलवियों और पादरियों के वचन को ही ब्रह्मवाक्य मानते हैं, वहाँ विचार-स्वतंत्रता कैसे आ सकती है, और विचारों की दासता में कर्म की स्वतंत्रता कहाँ हो सकती है?

हिंदू-समाज और सभ्यता सांप्रदायिक दासता से मुक्त है, इस बात का सबको गौरव है। हिंदू-धर्म के जिज्ञासु सदा सत्य की खोज में यही कहते सुनाई देते हैं कि "वह अंतिम सत्य क्या है?"

हिंदू-ऋषि और दार्शनिक एक काल्पनिक ईश्वर और फ़रिश्तों के अस्तित्व को स्वीकार करके अपने धार्मिक विचारों की स्थापना नहीं करते। हिंदू-धर्म का ब्रह्म 'ख़ुदा या ईश्वर' नहीं है। ख़ुदा एक काल्पनिक वस्तु है, जिसके आविष्कार का श्रेय सेमेटिक जातियों को है। हिंदुओं का ब्रह्म एक दूसरी शक्ति है। ब्रह्म की खोज हमारे जिज्ञासु और ऋषि ब्रह्मांड में स्थूल प्रकृति से आरंभ करते हैं।

उपनिषदों में प्रश्न होता है—यह संसार क्या है? हम क्या हैं? यह आत्मा क्या है? कहाँ से आती है? इस ब्रह्मांड को कौन शक्ति चलाती है? इन सब प्रश्नों की खोज करते हुए ऋषि परम ब्रह्म तक पहुँचते हैं। यह केवल हिंदू-सभ्यता ही है, जिसमें इतनी विचार-स्वतंत्रता है कि आस्तिक भी हिंदू है, नास्तिक भी। हिंदू-सभ्यता यह नहीं कहती कि तुम इन बातों को मानो, नहीं तो तुम हिंदू नहीं रहोगे। इसके अतिरिक्त हिंदू-धर्म-शास्त्र संसार में सबसे प्राचीन है। इस पर कई आँधियाँ और तूफ़ान आए और गुज़र गए; यह वैसा ही है। इसमें कई लहरें आईं और चली गईं; परंतु हिंदू-धर्म उसी प्रकार शांत सागर की भाँति निश्चल है। गीता ने हिंदू-धर्म की सर्वोत्तम व्याख्या की है। गीता कहती है—"सब मार्ग मेरी ही ओर आते हैं, और जो जिस मार्ग से आता है, मैं

उसी मार्ग पर उसे मार्ग में ही मिलता हूँ।" मैं हिंदू-धर्म के इस ज्ञान की रक्षा करना चाहता हूँ, और साथ ही यह भी चाहता हूँ कि हिंदुओं का संगठन दृढ़ होकर संसार के सब सांप्रदायिक संगठनों का मुकाबला कर सके। यदि संसार में सत्य की विजय होती है, तो मुझे निश्चय है कि हमारी विजय होगी। ये सब सांप्रदायिक संगठन हानिकारक हैं; क्योंकि ये शक्ति प्राप्त करके संसार को ग़लत रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। समय आवेगा, जब संसार को पता चलेगा कि मज़हब ने मनुष्य की कितनी हानि की है, उस दिन संसार हिंदू-सभ्यता के महत्त्व को समझेगा, जो अब तक विचार-स्वतंत्रता की रक्षा के लिये संसार की सारी शक्तियों से युद्ध करती रही है।

यदि संसार में किसी अन्य मज़हब का संगठन हो, तो हिंदू-संगठन की कोई आवश्यकता नहीं। जो लोग हिंदू-संगठन से भयभीत होते हैं, उनका भय निराधार है। धार्मिक सहिष्णुता हिंदुओं का विशेष गुण है। यदि किसी को भय हो, तो केवल अपने पापों से होना चाहिए। सांप्रदायिक पराधीनता के आधार पर संगठन करके दूसरों पर प्रभुत्व जमाने का यत्न करना अनुचित है। विचार-स्वतंत्रता से अज्ञान का पर्दा स्वयं दूर हो जायगा। हिंदुओं ने जितने दुःख उठाए हैं, सब धार्मिक सहिष्णुता के कारण उठाए हैं। सब वैयक्तिक गुण होते हुए भी दूसरी जातियों के विरुद्ध संगठित होने का भाव हिंदुओं में न था, इसलिये हिंदुओं पर संगठित शक्तियाँ सदा अत्याचार करती रही हैं। इस समय निस्संदेह हिंदुओं में एक नया विचार उत्पन्न हो गया है कि जीवन चाहे वैयक्तिक हो या सामाजिक, उसके लिये संसार में युद्ध की आवश्यकता है। यदि संसार से हिंदुओं का अस्तित्व गिर गया, तो संसार की उन्नति में बड़ी भारी बाधा पड़ जायगी। संसार से विचार-स्वतंत्रता के लिये युद्ध करने-

वाली एक शक्ति उठ जायगी, संसार से स्वतंत्रता का नाम मिट जायगा और उसका स्थान मूर्खता और पराधीनता ले लेगी। इस समय हिंदुओं का अपनी उन्नति के लिये प्रयत्न करना संसार की भलाई और उसकी रक्षा के लिये प्रयत्न करना है।

राम और कृष्ण

ही हमारे संगठन का एक साधन हैं। मैं उन लोगों को महापापी समझता हूँ, जो मज़हब को संगठन का साधन बनाते हैं। मज़हब एक फ़िलासफ़ी है, जिसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कौन कह सकता है कि स्वर्ग और नरक हैं? कौन कह सकता है कि प्रलय के दिन सारे मुर्दे उठ खड़े होंगे, और एक दूसरे को पहचान लेंगे। पिता, पुत्र, दादा, पोता किस-किस आयु के शरीरों में उठ खडे होंगे और किस तरह एक दूसरे को पहचानेंगे। इस प्रकार के सांप्रदायिक विचार चाहे वे कितने ही युक्ति-युक्त क्यों न हों उनमें संदेह के लिये सदा ही अवसर है। ऐसे विश्वासों को संगठन का आधार बनाना भूल है। यदि ये सब ढंग ग़लत हों, तो हिंदुओं को क्योंकर संगठित किया जा सकता है।

प्रत्येक जाति और देश में सदा ही महापुरुष होते आए हैं। इनको आदर्श पुरुष और अवतार की पदवी दी जाती है; क्योंकि इनके अंदर उस जाति के सभी गुण चरम सीमा में पाए जाते हैं। महापुरुषों के जीवन से ही किसी जाति के आचार और आदर्श का पता लगता है। क़ैसर जर्मनी का महापुरुष था; क्योंकि उसमें जर्मनी की महत्त्वाकांक्षा केंद्रित पाई जाती थी। अँगरेज़ों की महत्त्वाकांक्षा यह है कि उनका शासन सब समुद्रों पर हो। उनका महापुरुष लार्ड नेल्सन था; क्योंकि वह उनकी जलसेना का सबसे बड़ा सेनापति था। वाशिंगटन ने अमेरिका में स्वतंत्रता की पताका गाड़ी थी, वही उनका महापुरुष है। यही महापुरुष जाति की आत्मा और उसकी जान होते हैं। हिंदू-जाति

के महापुरुष राम और कृष्ण हैं। यदि हिंदू-जाति की आत्मा को देखना हो, तो राम और कृष्ण में देखा जा सकता है। यदि हिंदू-जाति के आदर्श को देखना हो, तो इन दोनों के जीवन को मनन कीजिए।

सांप्रदायिक फ़िलासफ़ी पुस्तकों में भरी रहती है; परंतु सर्वसाधारण पुस्तकें पढ़कर उसे समझ नहीं सकते। यदि किसी को हिंदू-धर्म के तत्त्व को समझना हो, तो राम और कृष्ण के चरित्र का अध्ययन करना चाहिए। विजया दशमी हिंदुओं का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और पवित्र त्योहार है। जातीय त्योहार उनके महापुरुषों के कृत्यों की स्मृति हैं और इन्हीं से जाति में जीवन का संचार होता है। यदि हिंदू-जाति का कोई इतिहास न होता, तो केवल राम और कृष्ण की स्मृति ही हममें जीवन का प्रचार करने के लिये पर्याप्त थी।

मेरी इच्छा

हिंदुओं की जातीयता राम और कृष्ण पर निर्भर है। लोग कहते हैं ये दोनों एक ही हैं, क्योंकि ये दोनो परमात्मा का अवतार थे। मैं यह तो नहीं जानता कि वे परमात्मा का अवतार थे या नहीं, परंतु स्वयं कृष्ण ने ही कहा है—"जब-जब धर्म का नाश होकर पाप का प्राबल्य हो जाता है, मैं धर्म की रक्षा के लिये आता हूँ।" ये परमात्मा हों या न हों, परंतु इतना तो निश्चय है कि करोड़ों हिंदुओं ने लाखों वर्षों तक इन महापुरुषों के नामों का जप परमेश्वर के नाम की तरह ही किया है। मैं चाहता हूँ, इस समय कोई तुलसी और सूर के समान कवि है, जो इन महापुरुषों की महिमा सर्वसाधारण के समझने योग्य भाषा में छंदोबद्ध कर लिख दे। यह काम हिंदू-संगठन के मार्ग में बड़ा सहायक होगा। तुलसी की रामायण बहुत अच्छा ग्रंथ है, परंतु उसकी भाषा ज़रा कठिन है। यदि मुझमें कवि की प्रतिभा होती और मैं सुंदर छंद लिख सकता, तो सब काम छोड़कर इसी के

पीछे लग जाता। इस पुस्तक में हिंदू-जाति के दूसरे महापुरुषों में गुरु नानक, गुरु गोविंद, वैरागी वीर, प्रतापत था शिवाजी का वर्णन हो सकता है। यह सब महान् आत्माएँ एक ही उद्देश्य को पूरा करने के लिये समय-समय पर अवतार धारण करती रही हैं।

आशा की रेखा

प्रति दिन समाचार-पत्रों में कहीं-न-कहीं झगड़े का सामचार सुन पड़ता है। प्रायः यह भी लिखा रहता है कि इतने हिंदू मारे गए, हिंदुओं की दूकानें लूटी गईं, और जला दी गईं। कई स्थानों से यह भी समाचार आता है कि इस काम में ख़िलाफ़त के कार्य-कर्ताओं ने भी भाग लिया है। कोहाट में ख़िलाफ़त के आदमी वरदियाँ पहने और झंडा हाथ में लिए लूट में भाग ले रहे थे। हिंदू जब इन समचारों को पढ़ते हैं, तो इनका हृदय धक से रह जाता है। हो भी क्यों न? जो कल लखपती थे, आज वे अपना पेट भरने के लिये दूसरों के आश्रित हैं। जो कल महलों में पंखों के नीचे आराम करते थे आज सोने के लिये ख़ाली ज़मीन ढूँढ़ते फिरते हैं। इनमें केवल सेठ-साहूकार ही नहीं, बल्कि वकील और बैरिस्टर भी सम्मिलित हैं। कोहाट की घटना सभी हिंदुओं के लिये शिक्षाप्रद है। क्या हिंदू इससे शिक्षा ग्रहण कर पैसे का प्यार छोड़कर संगठन की सहायता करेंगे? अब सोचने-विचारने का समय नहीं रहा, बल्कि झटपट काम करने का समय है। यह तो हुआ, परंतु हम निश्चय कह सकते हैं कि कांग्रेस हिंदू-मुसलिम प्रश्न को हल करने में असफल रही। महात्मा गांधी ने शेष सब प्रश्नों को एक ओर रख इस समस्या को सुलझाने की चेष्टा की, ताकि उन्हें कोई इस प्रश्न को सुलझाने का ढंग बता दे। हमारे राजनीतिक नेता अभी तक भ्रम में पड़े हुए हैं कि सभाओं, कमेटियों और कानफ़्रेंसों से एकता हो सकती है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह उपाय एकता करने में कभी सफल नहीं हो सकते। कांग्रेस अपना काम कर चुकी है, जब फिर उपयुक्त समय आवेगा, कांग्रेस आगे आ जायगी।

कांग्रेस के मुसलमान नेता इस झगड़े का उत्तरदायित्व हिंदू और मुसलमान, दोनों पर डालकर अपनी बेतअल्लुक़ी दिखाना चाहते हैं। कांग्रेस के हिंदू नेता भी अपनी निष्पक्षता का शिकार बन रहे हैं और कोहाट में भी वे दुःखी और निस्सहाय मुसलमानों को ढूँढ़ते फिरते हैं। निस्संदेह कोहाट में मुसलमानों पर भयंकर आपत्ति पड़ी है, क्योंकि उन्होंने हिंदुओं के जलते हुए मकानों में नाज का एक भी दाना नहीं छोड़ा। नहीं कह सकते, यह उनके दुःख का कारण है या प्रसन्नता का कि कोहाट में उन्होंने हिंदुओं का नाम तक मिटा दिया है।

कोहाट की घटना से हमारी सरकार का दिवालियापन भी प्रकट हो गया है। माना लोग स्वराज्य चाहते हैं, और हिंदू-मुसलमानों की वास्तविक एकता नहीं हुई; परंतु इसका यह अभिप्राय कभी नहीं कि गवर्नमेंट स्वराज्य के लिये यत्न करनेवालों की रक्षा के लिये उत्तरदायी नहीं है। यदि किसी सरकार के शासन में एक प्रबल भाग दूसरे निर्बल भाग को दो, तीन या अधिक दिन तक निश्चित होकर लूट और क़त्ल कर सकता है, तो उस गवर्नमेंट को शासन करने का क्या अधिकार है, और वह किस रोग की दवा है?

कई शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं। एक मुग़ल सम्राट् के शासन-काल में देश के एक दूरस्थ स्थान में एक बुढ़िया लुट गई थी। उसने बादशाह के पास जाकर कहा था, यदि तुम उस प्रांत का शासन समुचित रूप से नहीं कर सकते, तो तुमने उस देश को अपने अधिकार में क्यों रख छोड़ा है। वास्तव में ही यदि कोई सरकार प्रबल मनुष्यों से निर्बलों की रक्षा कर उनकी सहायता नहीं कर सकती, तो वह अपने सबसे बड़े कर्तव्य की अवहेलना करती है। इसके अतिरिक्त गवर्नमेंट का काम ही और क्या है। प्रबल को सरकार की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। यह कहना पागलपन है कि दोनों ओर के गुंडे

शरारत करते हैं। मंदिरों में पूजा के लिये घंटे बजानेवाले हिंदू गुंडे नहीं हैं, और न अपने घरों में अपनी स्त्रियों तथा बाल-बच्चों की रक्षा करने के लिये लड़नेवाले हिंदू गुंडे हैं। यहाँ पर अब मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हिंदू मुसलमानों से कोई झगड़ा नहीं करना चाहते और न उन्हें देश से बाहर निकालना चाहते हैं। मुसलमान हिंदुओं को इस देश में अपने प्राणों और धन की रक्षा नहीं करने देते। हिंदू केवल अपने प्राणों और धन की रक्षा करना चाहते हैं। हिंदुओं के लिये अब यह स्पष्ट हो गया है कि अपनी रक्षा करने के लिये उन्हें स्वयं तैयार रहना होगा, वरना उनके प्राण संशय में हैं। हिंदुओं के लिये संगठन इस समय जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। जो हिंदू नेता इस समय हिंदुओं की सहायता करने पर तैयार नहीं, उन्हें हिंदुओं की सहानुभूति और उनसे सम्मान की आशा छोड़ देनी चाहिए।

विजयादशमी का त्योहार हिंदुओं के लिये एक पाठ है। जिस समय हिंदुओं के धर्म और प्राण संकट में थे, उस समय भगवान् राम ने अवतार धारण किया, जिस समय उनके अपने देश के राजा कंस ने अत्याचारों को सीमा तक पहुँचा दिया था, कृष्ण ने उसका संहार किया। जिस समय देहली में हिंदुओं का धर्म संशय में पड़ गया था, वंदा बैरागी ने धर्म-ध्वजा खड़ी कर दी। इन दुर्घटनाओं में भी, जिन्हें देखकर हमारा हृदय टूक-टूक हो जाता है, प्रकृति का हाथ है। संसार में कोई बुराई ऐसी नहीं, जिसमें अच्छाई गुप्त रूप से अंतर्निहित न हो। मुझे भगवान् पर पूर्ण विश्वास है और इन सब घटनाओं में उनकी सहायता का हाथ मुझे दीख पड़ता है। ये ही कारण हिंदू-जाति को जगाने के कारण होंगे, और इनसे जाति में वह बल आवेगा, जो हमारा रक्षक होगा।

हिरनी के साथ उसका नन्हा-सा छौना था। उसे शिकारी ने घेर

लिया था। एक ओर आग लगा दी थी, दूसरी ओर बाढ़ थी। तीसरी ओर दो कुत्ते थे, और चौथी ओर शिकारी स्वयं बंदूक लिए घात में बैठा था। हिरनी स्वयं इन आपत्तियों से निकलकर अपने प्राण-रक्षा कर सकती थी, परंतु उसका बच्चा साथ था। ऐसे संकट के समय उसकी आँखें संकट-मोचनहार भगवान् की ओर उठी। "विनती करे मृग-नारी, संकट काटो मुरारी।" उनका हाथ लंबा है। आँधी चल पड़ी, आग उड़कर बाढ़ में लग गई। हिरनी छलाँगे भरती भाग गई। आओ, इस संकट के समय भगवान् राम और कृष्ण का ध्यान करें। वे ही हमें शक्ति प्रदान करेंगे।

मैं बिलकुल निराश नहीं हूँ

क्या हमारा भविष्य निराशामय है ? यह एक ऐसा प्रश्न है कि इस पर मैं जितना गूढ़ विचार करता हूँ, उतना ही यह गहन होता जाता है । मुझे इस प्रश्न का उत्तर निराशा में मिलता है, यदि मैं केवल अपनी दृष्टि को वर्तमान तक ही परिमित रक्खूँ । वर्तमान की सभी घटनाएँ ऐसी हैं कि कोई आशा ही उत्पन्न नहीं होती । रोग और उसके कारणों का पता है, परंतु रोगी बड़ा बेपरवा है । उसे न मृत्यु की चिंता है, न कष्ट का दुःख । ऐसा प्रतीत होता है कि यह सब भी प्रकृति के नियमानुकूल ही है । इस जाति की बेपरवाही इतनी बढ़ गई है कि इसे अपने अस्तित्व की भी चिंता नहीं रही है ।

यदि हम मनुष्य-समाज को देखें, तो जान पड़ता है कि यह भी एक समुद्र की भाँति है । इसमें लहरें उठती हैं । कुछ समय तक उनका प्रभाव भी रहता है, फिर वह लुप्त हो जाती हैं । हमारी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलन सब ऐसी ही लहरों के समान हैं, जो किसी समय प्रबल वेग से उठी थीं । परंतु काल की शक्ति अनंत है, वह इन सबको हड़प जाता है । यदि हम अपनी दृष्टि को परिमित रक्खें, तो हमारी दृष्टि इन लहरों तक ही रहती है, परंतु यदि हमारी दृष्टि ज़रा दूर तक चली जाय, तो समुद्र का प्रशांत भाग हमारी दृष्टि के सम्मुख आ जाता है ।

एक समय इस पृथ्वी पर बौद्ध-धर्म की प्रबलता थी । संसार के सब देशों ने इसके सामने सिर झुका दिया था । उस समय किसी को आशंका न थी कि एक दिन बौद्ध-धर्म का ह्रास हो जायगा

और कोई अन्य विचार उसका स्थान ले लेंगे। जिस समय ईसाई-धर्म ज़ोरों पर था, उस समय वह भी संसार को निगल जाना चाहता था। आज भी ऐसे आदमियों की कमी नहीं, जो अपने पुराने विचारों की लगन में लगे हुए हैं, परंतु योरप और अमेरिका में जाकर कोई भी मनुष्य देख सकता है कि ईसाई-धर्म समाप्त हो चुका है। आज भी योरप के ऊँचे-ऊँचे गिरजाघरों से ईसाई धर्म का वैभव दीख पड़ता है, परंतु जनता के हृदय से वह अब निकल चुका है। ईसाई-जनता में शिक्षा और सभ्यता के प्रचार के साथ-ही-साथ ईसाई-धर्म का तिरोभाव आरंभ हो गया था। एक समय था, जब योरप के देशों में प्रत्येक मुहल्ले में गिरजा बनाना आवश्यक समझा जाता था, परंतु अब अमेरिका के मुहल्लों में गिरजे के लिये कोई स्थान नहीं। वहाँ प्रत्येक मुहल्ले में स्कूल का होना आवश्यक समझा जाता है। मनुष्य के मस्तिष्क पर मज़हब का राज्य उसी समय तक रहता है, जब तक कि विद्या का प्रकाश उसे प्रकाशित नहीं कर सकता। शिक्षा के प्रभाव से विचारों की शक्ति मनुष्य में उत्पन्न होती है और विचारों की शक्ति उत्पन्न हो जाने से मज़हब की प्रबलता स्वयं दूर हो जाती है।

इसलाम को उत्पन्न हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ, और इसके सौभाग्य से इसलाम का प्रचार उन देशों में अधिक है, जहाँ अभी तक उन्नति की लहर नहीं पहुँची है। प्रकृति में उन्नति की लहर कभी आगे और कभी पीछे चलती है, शायद इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य-समाज के सब अंग शनैः-शनैः एक साथ उन्नति की ओर बढ़ें। इसलाम की उन्नति के समय में इसके सैनिकों ने अफ़्रीका के किनारों पर तथा सूडान के जंगली मनुष्यों को अपने में मिलाकर उन्हें समता का पाठ पढ़ाकर मनुष्य बनाया। जहाँ इसलाम ने इन असभ्य या अर्द्ध-सभ्य जातियों को उन्नति का मार्ग दिखाया, वहाँ उसने थोड़ी-बहुत

उन्नत जातियों के मार्ग में रुकावट डाल दी। इसलामी जातियों की मानसिक अवस्था ऐसी है कि वह एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढ़ सकती। इस प्रकार दोनों जातियाँ एकसमान सभ्य हो गईं। मानसिक शक्ति के विकास के रुक जाने से यह जातियाँ शारीरिक तौर पर अधिक बलवान् हो गईं और इन्होंने इसी शक्ति के प्रयोग को इसलाम के प्रचार के लिये आवश्यक समझा।

हिंदुओं की निर्बलता के अनेक भीतरी कारण हैं। इनके अतिरिक्त बाहिरी कारण भी इन्हें खा रहे हैं। दूसरों पर निर्भर होना निर्बलता का सबसे बड़ा कारण है। सबसे बढ़कर इनका पड़ोसी मज़हब अपनी पाशविक शक्ति से इन्हें निगल जाने के लिये सदा तैयार रहता है। हिंदू अपने को इन सब आक्रमणों को सहने में असमर्थ पाते हैं। हिंदुओं के इसलाम से अधिक भयभीत होने का बड़ा कारण यह है कि वह हमारा पड़ोसी है और उसे हम शत्रु से बदलकर मित्र बनाना सरल समझते थे। वास्तव में ही यह काम सरल होता, यदि इसलाम को स्थापित हुए कुछ अधिक समय हो गया होता और मुसलमान जातियों में मानसिक स्वतंत्रता कुछ अधिक होती। इस समय तक इसलाम विचार-स्वतंत्रता के विरुद्ध तुला हुआ है। इस समय इसलाम और विचार-स्वतंत्रता में एक तनातनी चल रही है। इसलाम में सहिष्णुता की कोई आशा तभी हो सकती है, जब इसलाम अंधाधुंधी छोड़कर विचारों की स्वतंत्रता को अपनावेगा। टर्की में विचार-स्वतंत्रता की विजय के थोड़े-बहुत लक्षण दिखाई देने लगे हैं, और उसने अपने आपको किसी सीमा तक मज़हबी जंज़ीरों से मुक्त कर लिया है। भारत के मुसलमानों में अभी तक विचार स्वतंत्रता के बोझ को उठाने योग्य सामर्थ्य नहीं हुई है।

मुझे यदि कोई आशा है, तो अपना दृष्टि-क्षेत्र बढ़ा देने पर ही है। समय व्यतीत होगा, इसे कोई रोक नहीं सकता। मानसिक उन्नति भी

होगी, क्योंकि संसार का प्रवाह रुक नहीं सकता। मानसिक उन्नति के प्रकाश के सम्मुख अंध विश्वास का अँधेरा स्वयं दूर हो जायगा। हिंदुओं की मानसिक अवस्था अधिक उन्नत है, वह सोच-विचारकर काम कर सकते हैं, और इनमें संप्रदाय के नाम पर अंधविश्वास नहीं है। सोच-विचार और सहनशीलता की शक्ति में हिंदू इस समय सब जातियों से बढ़कर हैं। हिंदू-जाति संसार में सबसे प्राचीन है। मुझे शंका है कि हिंदू-जाति में मानसिक उन्नति को बलिदान कर शारीरिक उन्नति हो सकती है। यदि ऐसा हो भी सके, तो वह मनुष्यता को पीछे हटा कर हो सकेगा। मुझे आशा है कि समय व्यतीत होने के साथ मुसलमानों की धर्मांधता और असहिष्णुता घटजायगी और वे हिंदुओं के समीप होते जायँगे, और उसी समय हिंदुओं के साथ इनको वास्तविक एकता होगी। इस समय मुसलमानों की ऊँची-से-ऊँची श्रेणी में भी वह विचार-स्वतंत्रता नहीं, जो हिंदुओं की नीची-से-नीची श्रेणी में पाई जाती है। मुसलमानों को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता है। समय उन्हें यह पाठ पढ़ावेगा वे युक्ति तथा विचार से सोचने-समझने लगेंगे, और बड़ी श्रेणी हिंदुओं के साथ मिलनेवाली होगी। उस समय इसलाम हिंदू-संस्कृति के महत्त्व को समझकर स्वीकार करेगा। मनुष्य का इतिहास बताता है, मनुष्य सदा ही अनेक अड़चनों और रुकावटों पर विजय प्राप्त करता आया है। मज़हब मनुष्य को बहुत समय तक मानसिक परतंत्रता में दबाकर नहीं रख सकता। एक दिन यह मानसिक पराधीनता अवश्य दूर होगी।

और भी दौरे फलक में हैं आनेवाले ;
नाज़ इतना न करें हमको मिटानेवाले।

हमारे भी हैं मेहरबान कैसे-कैसे ?

अपना काम करते हुए हमें अपनी विरोधी शक्तियों का भी ध्यान कर लेना चाहिए, नहीं तो हम अपनी अवस्था और परिस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। यदि हमारे देश में एक शासित और दूसरी शासक, दो ही जातियाँ होतीं, तो हमारी अवस्था इतनी विकट न होती। हमारी जाति के पुराने इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें हम अपनी समस्या का हल ढूँढ़ सकते हैं। हमारे दुर्भाग्य से हम अकेले ही पराधीन जाति नहीं हैं, हमारे साथ एक और मज़हब है, जिसके ग्रहण कर लेने से मनुष्य के अन्य सब भाव मिट जाते हैं और धार्मिक पक्षपात के अतिरिक्त उन्हें और कुछ दिखाई ही नहीं देता। अपनी पुरानी जाति से उन्हें इतना वैर हो जाता है कि उसे मिटा देने में ही उनकी सारी प्रसन्नता हो जाती है। अपनी पवित्र मातृभूमि उन्हें केवल एक मिट्टी का ढेला ही दिखाई पड़ने लगती है। अपना पुराना इतिहास उन्हें निरर्थक और बेहूदा दिखाई देने लगता है। यदि यह लोग देशोन्नति के कार्य में हमारी सहायता न करते, तो भी इतनी हानि नहीं थी। परंतु दुःख तो यह है कि इस विपद् के समय में भी इन लोगों का वही पुराना विचार हिंदुओं को मिटाकर देश पर अपना प्रभुत्व जमाने का ज्यों-का-त्यों चला आता है। यदि वे स्वयं कुछ नहीं कर सकते, तो अन्य जातियों के साथ मिलकर हमें हानि पहुँचाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

दूसरी ओर इनमें ऐसे लोगों की संख्या बड़ी भारी है, जो अपने संप्रदाय को फैलाना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं। इन

लोगों की दृष्टि में कोई भी काम, जो इनकी संख्या को बढ़ा सकता है, घृणित होने पर अच्छा समझा जाता है। उनकी शिक्षा यह है कि हिंदू काफ़िरों का वेश धारण कर लो और अबोध बच्चों और स्त्रियों को अपने मत में मिला लो। ऐसे भेड़ियों से अपनी रक्षा करना कठिन है। इनमें बहुत से ऐसे आदमी हैं, जो अपनी पुस्तकों के नाम हिंदू-पुस्तकों के ढंग पर रखकर उन्हें लाखों की संख्या में छपवाकर हिंदुओं में मुफ्त बाँटकर उन्हें अपने जाल में फँसा लेते हैं। गुजरात-प्रांत में आग़ाख़ानी गीता, गायत्री और अवतारों की कथा से हिंदुओं को उतना ही भय है, जितना कि किसी जाति को शत्रुओं से घिरे होने पर उनकी भयानक चालों से होती है।

आगे है हमारी सरकार की नीति, जो मुसलमानों के साथ मिलकर हिंदुओं को नीचा दिखाना चाहती है। पंजाब की अवस्था कितनी विचित्र है, वह ब्राह्मण और क्षत्रिय, जो आदि काल से इस भूमि के स्वामी चले आए हैं, अपने पूर्वजों के देश में ज़मीन तक ख़रीदने के अधिकारी नहीं रहे। कहा जायगा, इसका कारण इन लोगों का काश्तकार न होना है। परंतु जो सरकार मुसलमानों के शिक्षा की दृष्टि से हिंदुओं से पीछे होने पर उन्हें छात्र-वृत्तियाँ और सरकारी पदों का प्रलोभन देकर हिंदुओं के बराबर कर सकती है, क्या हिंदुओं के ऊँची श्रेणी के लोगों को कृषि की ओर आकर्षित नहीं कर सकती। प्रश्न तो नीति का है। पंजाब में सरकारी नौकरी मुसल-मानों को संख्या के अनुपात से दी जाती है, परंतु बिहार और उड़ीसा में, जहाँ मुसलमानों की संख्या लगभग तीन प्रति शतक है, वहाँ भी उन्हें ही अधिक अवसर दिया जाता है। इसका कारण समझ में नहीं आता। लाला लाजपतरायजी अभी आसाम से आ रहे हैं। आसाम में मुसलमानों की बस्ती नहीं के बराबर है। वहाँ

की भूमि अत्यंत उपजाऊ और सुंदर है। पश्चिमी बंगाल के मुसलमान वहाँ जा रहे हैं और सरकार उन्हें नाम-मात्र मूल्य पर भूमि दे रही है। वे लोग ऐसे नीच हैं कि आसामी स्त्रियों को छीनकर अपने घर में रख लेते हैं । इस भय को देखकर एक सज्जन ने कौंसिल में यह प्रस्ताव किया है कि सरकार को यह भूमि दूसरे प्रांत के निवासियों को न देनी चाहिए। इस पर आसाम के मंत्री ने आपत्ति की कि यह तो मुसलमानों पर आक्रमण है। इस पर इन महाशय ने डरकर अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। वहाँ तो अधिक संख्या को कोई नहीं पूछता । संख्या बहुत हो या थोड़ी, परंतु उसमें जीवन का होना ही अधिक महत्त्वपूर्ण बात है।

कई मुसलमान सज्जनों का कहना है कि सरकार को मुसलमानों को ही बड़े-बड़े पद देने चाहिए, क्योंकि इस देश में उनका राज्य रह चुका है। कइयों का कहना है कि सरकार जो कुछ कर रही है, वह उचित और न्यायसंगत है। संभव है, यही ठीक हो, परंतु राजनीति तो इसका समर्थन नहीं करती। यह तो सरकार को निश्चित रूप से विदित है कि मुसलमान इस देश को अपना नहीं समझते और न उन्हें इससे विशेष सहानुभूति ही है। इसलिये हिंदुओं को वश में करने के लिये सरकार मुसलमानों को अपने हाथ में रखना चाहती है। कुछ हिंदू सज्जन विश्वास करते हैं कि हम भी ख़ुशामद और स्वामिभक्ति से सरकार के कृपा-पात्र बन सकते हैं। यदि वे ऐसा कर सकते हैं, तो कर देखें। परंतु किसी की ख़ुशामद-दरामद का सरकार की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो सब आगा-पीछा देखकर अपनी नीति निश्चित करती है। इस प्रकार हिंदू चक्की के दो पाटों में पिस रहे हैं। मुसलमान यद्यपि संख्या में थोड़े हैं और हिंदुओं की ही तरह पराधीन हैं, परंतु उनका संगठन विशेषकर हिंदुओं के विरोध में बड़ा प्रबल है। इधर सरकार भी

इन्हें प्रोत्साहित करती है। इन दोनों चक्की-पाटों में से निकल बचना टेढ़ी खीर है। इस देश में हिंदू रियासतें बहुत अधिक हैं। यदि इनके रईस ज़रा साहस से काम लें, तो हिंदू-जातीयता के निर्माण में बड़ी सहायता मिल सकती है, परंतु बात उलटी ही है। हिंदू-रियासतों में हिंदुओं को मुसलमान बनाने का काम पूरे ज़ोरों पर हो रहा है। सरकार के समाचार-पत्र भी इस विषय में अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। हिंदू-रियासतों में सब जगह मुसलमान अफ़-सर नियुक्त किए जाते हैं, ताकि वे हिंदुओं को दबा रक्खें। मुसलमान-रियासतों में मुसलमानों के एजेंट खुले मैदान काम कर रहे हैं, परंतु क्या मज़ाल कि हिंदू-रियासतों में कोई हिंदू जातीय भाव का प्रचार कर सके।

हम स्वयं अपने सबसे बड़े शत्रु हैं

हिंदू-जाति के सबसे बड़े शत्रु स्वयं इसके अपने अंग हैं, जो इसके अस्तित्व से निश्चिंत हैं। जहाँ प्रत्येक मुसलमान अपने धर्म का स्वभाव से ही प्रचारक है, वहाँ हिंदुओं के हृदय से जातीयता का विचार ही उठ गया है। हमारा दूसरा रोग हमारी अकर्मण्यता है। यदि किसी के हृदय में कोई भाव भी उत्पन्न हो जाय, तो उसे अकर्मण्यता आ घेरती है। प्रत्येक हिंदू यही कहता दिखाई देता है, क्या करें कुछ हो नहीं सकता।

हमारा पुराना दुर्योधन के समय का रोग ईर्ष्या है। इस रोग का कोई उपाय ही नहीं हो सकता। हमारी अवनति के मूल कारण यही हैं, जो अनेक रूप धारण करके हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। तो भी हमें यह देखना है कि हमारे विचार के अनुसार हमारी जातीयता की शत्रु कौन-कौन शक्तियाँ हैं। फूट और धड़ेबंदी तो हिंदुओं के स्वभाव में घुस गई हैं। दल बाँधने में इन्हें आनंद और उत्साह होता है। अधिक विस्मय का विषय यह है कि धड़ेबंदी को छोड़कर यदि उन्हें जाति के लिये कुछ काम करने के लिये कहा जाय, तो इनका सारा उत्साह काफ़ूर हो जाता है, और कोई थोड़ा समय भी इस काम के देने के लिये तैयार नहीं होता। इन कारणों से हिंदू संगठन एक इतना सूक्ष्म तराज़ू बन गया है, जिसका सम करना बड़ा कठिन काम है। हम अपनी उपद्रवी प्रकृति के कारण उसे सदा विषम करने के लिये तैयार रहते हैं। इस तराज़ू को ठीक कर संगठन करना हिंदुओं को एक नीरस और निष्प्रयोजन कार्य मालूम होता है।

आओ, फिर भी सोच देखें कि हमारी अनेकता के बीज कहाँ-कहाँ

हैं। सबसे पहले हमारे कांग्रेसवाले भाई हैं। उनका कहना है कि संगठन ने कांग्रेस के काम को बहुत बड़ा धक्का पहुँचाया है। अच्छा हो यदि वे अपनी दृष्टि को थोड़ा विस्तृत कर उन प्रांतों में कांग्रेस की अवस्था को देखें, जहाँ अभी तक संगठन की आवाज़ नहीं उठी है। उन स्थानों में भी कांग्रेस का काम कुछ नहीं हो रहा। संगठन पर दोषारोपण करना संकीर्णता है। कांग्रेस ने तीन-चार साल काम किया है, उस समय उसके सामने एक कार्यक्रम था। अब कांग्रेस के सामने कोई काम नहीं है। कार्यक्रम को बंद कर दिया गया है या स्थगित कर दिया गया है। इस अवस्था में काम हो कैसे सकता है। कांग्रेस के सम्मुख एक कार्यक्रम है, संगठन के सम्मुख दूसरा। दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं। जब जनता के सम्मुख कोई कार्यक्रम न हो, तो जनता को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने लिये दूसरा काम चुन ले। कई स्थानों पर दोनों प्रकार के व्यक्ति प्रयाप्त संख्या में हैं। उस जगह परस्पर झगडने की अपेक्षा अच्छा यही होगा कि काम बाँटकर किया जाय। संगठन के संबंध में यही समझ लिया जाय कि यह एक पृथक कार्य है। कांग्रेस के असहयोग के प्रस्ताव की दृष्टि से हमें सब प्रकार की सरकारी नौकरी से परहेज़ करना चाहिए। परंतु संगठन की दृष्टि से हमें पुलीस और फौज़ की नौकरी के लिये हिंदुओं को उत्साहित करना चाहिए। परंतु इतना आवश्यक है कि आंदोलन के चलानेवाले सज्जनों में चरित्र-बल और त्याग की पर्याप्त मात्रा हो।

संगठन के लिये अगली समस्या आर्य-समाजियों और सनातन-धर्मियों की है। आर्य-समाजियों को चाहे संगठन से सहानुभूति हो या न हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने अब तक सगठन के कार्य में किसी प्रकार का रोड़ा नहीं अटकाया। आर्य-समाज को यदि कोई शिकायत है, तो यही कि हिंदू-महासभा पर्याप्त उन्नति नहीं कर रही है।

मुझे विश्वास है, जिस समय संगठन का आंदोलन पर्याप्त शक्ति पकड़ लेगा, उस समय आर्य-समाज तन, मन, धन निछावर करके इस काम की सहायता करेगा। क्या अच्छा होता यदि आर्य-समाज आरंभ से ही इस आंदोलन में प्राण डालने का प्रयत्न करता। इस समय तक केवल सनातनधर्म-सभा ने ही संगठन का पूरा साथ दिया है। यद्यपि कई स्थानों पर इस समय आर्य-समाज और सनातनधर्म-सभाओं में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा चल रही है, परंतु हमें पूर्ण आशा है कि हिंदू अपनी पुरानी सहिष्णुता का प्रमाण देंगे। परंतु हम यह देखकर चुप नहीं रह सकते कि सनातनधर्म के एक-दो अगुआओं ने हिंदू-महासभा का विरोध करना आरंभ कर दिया है। हम उनकी परिस्थिति का ध्यान दिलाकर उन्हें समझा देना चाहते हैं कि संपूर्ण हिंदू-जाति सनातनधर्म सभाओं के पीछे नहीं चल सकती। हिंदू शब्द की कई परिभाषाएँ हैं। हिंदू-महासभा की परिभाषा के अनुसार भारत में स्थापित हुए सभी धर्म हिंदू शब्द के अंतर्गत हैं। इन सभी धर्मों को महासभा में उतना ही अधिकार प्राप्त है, जितना सनातन-धर्म-सभा को। हम मानते हैं, सनातनधर्म-सभा को उन सब सिद्धांतों की रक्षा का पूरा अधिकार है, जिनका सनातनधर्म से संबंध है। परंतु सनातनधर्मी भाइयों को यह आशा कभी नहीं करनी चाहिए कि हिंदू-सभा सनातनधर्म के ही सिद्धांतों के अनुसार काम करेगी। महासभा के सदस्य बनने का अधिकार अछूत भाइयों को भी उतना ही है, जितना कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों को। यदि कोई सज्जन महा-सभा में अछूतों के प्रवेश के विरुद्ध हैं, तो मेरी वैयक्तिक सम्मति में तो अछूतों को भी पूरा अधिकार है कि वे सभा में अपनी संख्या अधिक करके उन सज्जनों को सभा से बाहर कर दें, जो उन्हें सभा से निकालना चाहते हैं। हिंदू-महासभा किसी एक विशेष संप्रदाय की संपत्ति नहीं है।

सनातनधर्म सभाओं का कहना है कि हिंदू-महासभा हिंदुओं के सुधार में हाथ न डाले, यह सनातनधर्म-सभा का अपना काम है। मैं पूछता हूँ कि सनातनधर्म-सभा का विशेष कौन-सा मत है। वह शैव मत को मानती है या शाक्त को। वैष्णव-धर्म को मानती है या देवी की पुजारी है। वह इन सब मतों के मंदिरों को कैसे सुधार सकेगी? इसी प्रकार हिंदू-महासभा किसी भी मत के पूजा के तरीक़े में दख़ल नहीं देना चाहती। जो मंदिर जिस देवता का है, वह उसी के लिये रहेगा, परंतु उनकी आय-व्यय और संपत्ति का प्रबंध हिंदू-महासभा के हाथ में रहने से सभा यह देख सकेगी कि देवता की पूजा में अर्पण किया गया धन उचित रूप से धर्म की रक्षा में व्यय हो रहा है। वह दुराचार में तो नष्ट नहीं हो रहा है। इससे भी अधिक कठिन प्रश्न विधवाओं का है। सनातनधर्म-सभा सभी हिंदुओं की प्रतिनिधि नहीं है। विधवाओं के संबंध में सनातनधर्म-सभा के चाहे जो विचार हों, वह उनका प्रचार कर सकती है। हिंदू-सभा उनका विरोध कभी न करेगी। हिंदुओं में ही जाटों इत्यादि की कई ऐसी बिरादरियाँ हैं, जिनमें विधवा-विवाह को बिलकुल भी बुरा नहीं माना जाता। सनातनधर्म-सभा इन लोगों को हिंदू-समाज से बहिष्कृत नहीं कर सकती। इन लोगों को पूरा अधिकार है कि यह सभा में सम्मिलित होकर विधवाओं की रक्षा के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करें। इसी प्रकार सनातनधर्म-सभा भी अपने विचारों को सभा के आगे रख सकती है। परंतु वह सभा पर अपना एकाधिकार नहीं क़ायम कर सकती।

कई ऐसे सिद्धांत हैं जिन्हें सनातनधर्म-सभाएँ धर्म का नाश करने-वाला समझती हैं, और कई दूसरे हिंदू उन्हें ही इस समय जाति की रक्षा का एक-मात्र उपाय समझते हैं। हिंदू-सभा का यही कर्तव्य है कि इन सब भिन्न-भिन्न विचारों के मनुष्यों को एकत्र रख जाति की

उन्नति के लिये एक कार्य-क्रम निश्चित करे। यह काम कोई एक सांप्रदायिक संगठन नहीं कर सकता। यदि हिंदू-सभा भी इस काम को छोड़ दे, तो उसके अस्तित्व की ही कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

इससे आगे चलिए, तो मालूम होगा कि हमारी बिरादरियों के झगड़े भी हमारे संगठन के मार्ग में रोड़ा अटका रहे हैं। यदि किसी स्थान पर एक क्षत्रिय महाशय को सभापति बना दिया जाता है, तो उसमें ब्राह्मण इसलिये सम्मिलित नहीं होते कि उनका पारस्परिक वैमनस्य देर से चला आता है, जिसे वे छोड़ नहीं सकते। ब्राह्मण क्षत्रियों का नाम केवल उदाहरण के लिये दिए हैं, परंतु ऐसी अनेक छोटी-छोटी बिरादरियाँ हैं, जिनमें यह विचार काम कर रहा है। इन बिरादरियों के प्रधान अपना नेतृत्व या चौधरीपन बनाए रखने के लिये जाति के हित का ध्यान नहीं करते। हिंदू-महासभा का काम जाति को एक करना है। इन सब बिरादरियों का उसमें सहायक होना चाहिए।

मैंने उन तीन-चार अड़चनों के विषय में कुछ कहा है, जो सभा के मार्ग में रुकावट बन रही हैं। इन अड़चनों को उत्पन्न करनेवालों की सेवा में मैं इतना कह देना चाहता हूँ कि इस समय जाति की नाव भँवर मे पड़ी हुई है। यदि यह नाव डूब गई, तो वे सब भी इसके साथ ही डूब जायँगे। सभाएँ, समाजें और बिरादरियाँ अकेली-अकेली नहीं जी सकतीं। क्या कभी हमने विचार किया है कि इन संकटों का क्या कारण है। मैं बता देना चाहता हूँ, यह सब महानुभाव दुर्योधन और जयचंद के भाई हैं। उन्हें बुरा कहते हुए भी यह उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चल रहे हैं।

यह स्वार्थ और संकीर्णता हममें से किस प्रकार दूर हो। ऐसे आदमियों का हमारी समाज में होना आवश्यक ही है और इसका कारण हमारी पराधीनता और दीनावस्था है। इसका क्या उपाय हो सकता है?

संसार में एक उपाय तो यह देखा जाता है कि कोई शिवाजी, कोई बैरागी वीर या कृष्ण पैदा हो, जो अपनी शक्ति और बल से इस पाप के मल को जाति से निकालकर बाहर कर दे। परंतु इनको भेजनेवाला तो परमात्मा है। हम सब उसकी ओर अपने नेत्र करें और उससे अपनी रक्षा की प्रार्थना करें।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि जाति में एक ऐसा प्रबल आंदोलन उत्पन्न कर दिया जाय, जो उन लोगों को, जो जाति के हित की चिंता न कर वैयक्तिक लाभ के लिये इसे हानि पहुँचा रहे हैं या पहुँचाने से परहेज़ नहीं करते, यह दृढ़ निश्चय करा दें कि वे जाति की आँखों में धूल नहीं डाल सकते।

यदि कोई शक्ति अवतार धारण नहीं करती, तो हमें अपनी शक्ति से ही अपनी रक्षा करनी होगी। क्या हिंदू इस पुकार का कोई आशाजनक उत्तर देंगे?

रक्षा का उपाय

संसार के इतिहास में अनेक हृदयस्पर्शी कथाएँ मिलती हैं, परंतु संभवत 'जॉन ऑफ़् ऑर्क' की कथा से अधिक हृदयद्रावक कथा दूसरी नहीं मिलेगी। जॉन एक फ्रेंच कन्या थी। फ्रांस के इतिहास में एक समय आया था जब इँगलैंड ने फ्रांस पर आक्रमण कर उसके बहुत-से प्रदेश को अधिकृत कर लिया था। फ्रांस का सुंदर और सुरम्य प्रदेश उजड़ने लगा। अँगरेज़ी सेना नगरों और क़सबों को लूटने लगी। फ्रांस के शासक ऐसे नपुंसक थे, उनमें जातीय अभिमान मिट गया था कि वे दूसरी जाति की पराधीनता की ज़ंजीरों में जकड़ दिए गए। फ्रांस की अवस्था अत्यंत कष्टमय और करुणाजनक थी।

जो एक कृपक की कन्या थी वह अपनी जाति के कष्टों और उस पर होनेवाले अत्याचारों की कथा सुनती, और घर में बैठ फूट-फूटकर रोती। वह सोचती थी कि उसकी जाति की रक्षा कौन करेगा? कई रात्रियाँ रोते और जागते बीत गईं। अत में उसे एक दिन स्वप्न में एक फरिश्ते के दर्शन हुए, उस फ़रिश्ते ने ज़ोर से कहा—"जाओ अपने राजा से जाकर कहो कि परमेश्वर ने तुम्हें अपने देश की रक्षा के लिये भेजा है।"

वह अबोध गँवार लड़की अपने घर से निकल पड़ी। आगे इतिहास की लंबी घटनाएँ हैं, वह किस प्रकार राजा तक पहुँची, किस प्रकार उसने सैनिक वेष धारण कर फ्रांस की सेना का सेनापतित्व अपने हाथ में ले अँगरेज़ों को पराजित किया।

जॉन ऑफ़् ऑर्क उस समय फ्रांस के स्त्री-पुरुषों का प्राण बन गई थी। सभी स्त्री-पुरुष चलते-फिरते और काम करते दीखते थे। परंतु

ऐसा प्रतीत होता था कि इन सबकी इंद्रियाँ जॉन के मस्तिष्क की अनुगामी हैं। इस कन्या की प्रतिमूर्ति हम उस राजपुत्री में देख पाते हैं, जो बौद्धों के अत्याचारों को सहन न कर सकी थी। वह रो-रोकर कहती—"किं करोमि ? क गच्छामि ? को वेदानुद्धरिष्यति ? क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन वेदों की रक्षा करेगा ?" बौद्ध लोग हमारे बच्चों की जान और कन्याओं के सतीत्व पर तो हाथ नहीं डालते थे। उनके साथ तो हमारा केवल सांप्रदायिक भेद था। वे अपने सिद्धांतों की शिक्षा अपने ढंग पर देते थे। राजकुमारी वेदों का अपमान न सह सकती थी। हम नित्य नई घटनाएँ सुनते हैं, अमुक स्थान पर लड़की को उड़ा लिया गया, अमुक स्थान पर बच्चों को इकट्ठे कर उठा ले गए, परंतु कुछ असर नहीं होता। लखनऊ में एक ब्राह्मण बीमार था, एक मुसलमान डॉक्टर उसकी चिकित्सा करने आता था। ब्राह्मण मर गया और डॉक्टर ने उसकी स्त्री को बहकाकर घर में रख लिया। हरिद्वार में मैंने सुना कि एक दर्जी दूकानदार ने एक हिंदू-लड़की को घर में रख लिया है, और उससे यह काम लेता है कि वह दूसरी लड़कियों को उसके पास बहकाकर ले आती है, और वह उन्हें गायब कर देता है। ऐसी ही घटनाओं की सूचना सीमांत-प्रदेश से हमें मिलती है। बिहार और पश्चिमीय बंगाल में नवयुवती विधवाओं को ज़बरदस्ती उठाकर छिपा लिया जाता है ! क्या कोई ऐसा हृदय है, जो इन घटनाओं को सुनकर व्यथा से तड़फ उठे और कहे—"कौन रक्षा करेगा ?" भगवान् कृष्ण ने कहा तो है कि "जब अत्याचार बढ़ जाता है, तो वे रक्षा करने आते हैं।" या तो अभी अत्याचार अधिक नहीं हुआ या बुलानेवाला कोई नहीं है।

हमें धमकियाँ दी जाती हैं कि तुम इसलाम के विरुद्ध संगठन करते हो। हाँ, यदि लड़कियों को उठा ले जाना इसलाम है, तो हमारा संग-

ठन इसलाम के विरुद्ध है। यदि बच्चों को उड़ा ले जाना इसलाम है, तो हमारा संगठन इसलाम के विरुद्ध है। हमें इसे मानने में कोई लज्जा नहीं कि यदि छल प्रपंच से हिंदुओं में फूट डालने का नाम इसलाम है, तो हम इसलाम के विरुद्ध हैं। यदि इसलाम हिंदू-जाति को नष्ट करनेवाली शक्ति का नाम है, तो हमारा संगठन इसलाम के विरुद्ध है। यदि इसलाम हमारा पड़ोसी और भाई बनकर रहने के लिये तैयार हो, तो शत्रुता तो दूर रही. हम इसलाम को गले लगाने के लिये तैयार हैं। यदि मुसलमान भाई स्वराज्य के आंदोलन में हिंदुओं पर एहसान करके सम्मिलित होना चाहें, तो न हों। उन्हें ऐसा करना हो, तो अपना कर्तव्य समझकर करें। स्वराज्य का आंदोलन इसी अवस्था में चल सकता है, वर्ना नहीं।

हमारी समस्या के विकट होने के कई कारण हैं। जो कुछ मुसलमान हमारे साथ करते हैं, हम उस सबका इलाज ख़ूब अच्छी तरह कर लेते, यदि इस देश में मुसलमानों का ही राज्य होता, तो हम समझ लेते कि हमें अपनी रक्षा स्वयं करनी है। दुःख यह है कि हमें अपनी रक्षा के लिये उस सरकार का मुख ताकना पड़ता है, जो हमारी जाति के दुःख और अपमान को अनुभव नहीं कर सकती। सरकार के अपने हित और हैं, इसलिये हमारी अवस्था उससे कहीं अधिक विकट है जितनी वह दीख पड़ती है।

हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि एक वही आंदोलन जीवित रह सकेगा, जो जाति की इस आपत्ति से रक्षा कर सकेगा। यदि कोई भी आंदोलन सफल न हो सका, तो इस जाति का अस्तित्व शेष न रहेगा, और उसके साथ ही सब आंदोलन भी समाप्त हो जायँगे। हमें हर समय अपने मस्तिष्क और हृदय में यह ध्यान रखना चाहिए कि हम किसी-न-किसी प्रकार अपनी जाति की सेवा में कुछ भाग ले सकें। इसके साथ ही हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए

कि जिस आंदोलन को अपना सर्वस्व बना प्रयत्न में लगे हुए हैं, वह हमें हमारे उद्देश्य की ही ओर ले जा रहा है, या अन्य किसी ओर। मेरी प्रार्थना है कि यदि इस प्रकार सोचने पर हमें अपना आंदोलन उद्देश्य के पथ से च्युत प्रतीत हो, तो हमें उसे छोड़ देना चाहिए, या उसे उद्देश्य के पूरे करनेवाले आंदोलन में मिला देना चाहिए। सबसे पहले मैं आर्य-समाज को ही लेता हूँ, क्योंकि वर्तमान में यही सबसे पहला आंदोलन है। अब आर्य-समाज के लिये अपने उद्देश्य की ओर जानेवाले मार्ग को परख लेने का समय आ गया है। आर्य-समाज का उद्देश्य हिंदू-जाति का सुधार और उसकी रक्षा है या कुछ और? यह हिंदू-जाति और सभ्यता का अंश है या मुसलमान, सिख, ईसाई आदि पंथों की तरह हिंदू-धर्म से पृथक् और स्वतंत्र एक नया पथ है। इस समय तक आर्य समाज क्रियात्मक जीवन में बिलकुल हिंदू रहा है। (यद्यपि आर्य-समाज की एक पार्टी के कुछ सभासद अपने को हिंदू कहने के लिये तैयार नहीं) हिंदू इसलिये क्योंकि हिंदू कोई सम्प्रदाय नहीं, यह एक सामाजिक संगठन (Social system) है, जिसका सबसे बड़ा चिह्न जाति-पाँति का बंधन है। इस समय समाज के दोनों दल इस जाति-पाँति के बंधन के संगठन में सम्मिलित हैं, इसलिये इन दोनों को पक्का हिंदू कहना चाहिए, यद्यपि यह दोनों दल अपने धर्म के सार्वभौम होने का अभिमान करते हैं। इस आर्य-समाज के हिंदू होने से यह स्पष्ट है कि समाज का उद्देश्य हिंदू-जाति की उन्नति और रक्षा है। इसका अंतिम उद्देश्य वैदिक धर्म को सार्वभौम धर्म बनाना है। यह भी हिंदू-धर्म का ही काम है।

वैदिक धर्म के प्रचार का एक उपाय तो यह हो सकता है कि इसे एक नया रूप देकर इसका प्रचार किया जाय। मुझे भी कभी-कभी ऐसा ख़्याल आ जाता था। अस्तु, यदि किसी आर्य-समाजी के मन में

ऐसा विचार हो, तो उसे अपने को हिंदू-समाज से एकदम पृथक् कर लेना चाहिए। अन्य मतावलंबियों को अपनी समाज में सम्मिलित करते हुए उन्हें अपनी संतान का विवाह आदि इसी समाज में करना और हिंदू-समाज के सामाजिक संगठन से पृथक् हो जाना चाहिए। यह तो है संप्रदाय बनाने का ढग। यदि किसी में इतना साहस न हो, तो उसके लिये यही कहा जायगा कि वह हिंदू ही है और कुछ नहीं। इस अवस्था में समाज के कामों की एक ही कसौटी रह जाती है, और वह यह कि उनका काम हिंदू-जाति के हित के कहाँ तक अनुकूल है। इस समय हिंदू-जाति का हित केवल इसी बात में है कि इस जाति की भिन्न भिन्न समाजें और संप्रदाय मिलकर एक संगठन बनाएँ। अपनी-अपनी डेढ़ ईंट की मसजिद बनाने से जाति का भला नहीं हो सकता। आर्य-समाज का शिक्षा-प्रचार का काम संसार की दृष्टि में चाहे कितना ही बड़ा और अच्छा प्रतीत हो, वह वास्तव में निरर्थक और व्यर्थ है। केवल शिक्षा-प्रचार को ही अपना उद्देश्य बना लेने से समाज अपने उद्देश्य से सैकड़ों कोस दूर चला गया है। हिंदू-समाज पर दिन-प्रति-दिन विपत्ति पड़ती जा रही है, और समाज को केवल अपने स्कूलों के लिये चंदा करने और उनके गुण गाने से ही मतलब है। इस शिक्षा का उद्देश्य क्या है? "क्योंकि लोगों को सरकारी नौकरी की इच्छा है, इसलिये हम नवयुवकों को नष्ट होने से बचाकर उसे पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं।" इसमें केवल दृष्टि-कोण का भेद है। यदि देश और धर्म की चिंता में भूखे रहना, सांसारिक सम्मान की चिंता न करना और अन्य सैकड़ों कष्ट सहन करना जीवन का नष्ट होना है, तब तो अवश्य आपकी शिक्षा का उद्देश्य ऊँचा और अच्छा है। आपके विचार के अनुसार हकीक़त ने अपना जीवन नष्ट कर दिया, उसने सांसारिक सुख-भोग और मान-प्रतिष्ठा की चिंता नहीं की। आपके विचार में राणा

प्रताप मूर्ख था, जो वनों में अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये भटकता फिरता था, और उसके बच्चे अनाज के लिये तरसते थे। आपकी सम्मति में मानसिंह बुद्धिमान् मनुष्य था, क्योंकि वह ख़ूब सुख तथा सम्मान भोगता था। आपकी शिक्षा से कुछ मनुष्यों को सांसारिक सुख मिल जाता है, सो ठीक है, परंतु इससे जाति में जीवन आता है या मृत्यु ? प्रश्न होता है कि समाज के लिये शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता ही क्या है ?

उत्तर मिलेगा, समाज का उद्देश्य विद्या-प्रचार है। मैं पूछता हूँ, विद्या का अर्थ क्या है ? जिस समय देश में इसलाम का शासन था अरबी, फ़ारसी पढने से नौकरियाँ मिलती थीं, उस समय क्या उर्दू के इल्मोअदब और इसलामी साहित्य का प्रचार ही विद्या थी। उस समय क्या ऐसे मकतब बनाना ही समाज का उद्देश्य होता ? यदि ऐसी ही बात है, तो बलिहारी है इस मस्तिष्क की। क्या ऐसी ही शिक्षा से हिंदू-जाति का उद्धार और वैदिक सभ्यता का प्रचार होगा। कहा जाता है कि वर्तमान शिक्षा के बिना आर्य-समाज के सिद्धांत समझ में नहीं आते। मैं पूछता हूँ, जो लोग बुद्ध और शंकर के दर्शन को समझ सकते हैं, उन्हें क्या आर्य-समाज के सिद्धांत समझ में नहीं आ सकते। फिर भी सज्जनो, मैं बडा ही नादान और निराला हूँ, जो इतने बडे काम के महत्त्व को नहीं समझ सकता। काम के महत्त्व को मैं समझता हूँ और काम करनेवालों के लिये मेरे हृदय में सम्मान है, परंतु भेद इतना है कि मैं इसे ठीक मार्ग नहीं समझता। अच्छा होता यदि इतनी शक्ति और धन जाति की भलाई में ख़र्च होता। बंगाल, बंबई या संयुक्तप्रांत में कहीं भी इतना रुपया नष्ट नहीं होता, जितना पंजाब में। यह सब काम तो अब शिक्षा-सदस्य के साथ मिलकर किया जा सकता है। परंतु पंजाबी समझें कैसे, इनकी प्रकृति अपने ही ढंग की है।

गरमी की ऋतु में रेल का सफ़र कीजिए तो स्टेशनों पर सेवा-समिति के सदस्य ठंडा पानी पिलाते मिलेंगे, कई स्थानों पर बनिए लोग यात्रियों को बरफ़ का पानी पिलाने के लिये रुपया दे देते हैं। मैंने यात्रियों को कहते सुना है, भाई धन्य जन्म है! प्यासों को पानी पिलाना, इससे बढ़कर और क्या पुण्य है? यदि सेवा-समितिवाले अपने सदस्यों की नामावली तथा काम की रिपोर्ट तैयार करें, तो बड़ी भारी पुस्तक बन सकती है। परंतु शोक है, मेरी समझ ही निराली है। मैं इस काम का कुछ मूल्य नहीं समझता। इस प्रकार समय और शक्ति के व्यय को मैं निरर्थक समझता हूँ। इस प्रकार पानी पिलाने से जाति में कभी जीवन नहीं आ सकता। रेल के यात्रियों को पानी पिलाना रेलवे का कर्तव्य है। हमारा काम शिकायतें करके रेलवे को इस काम के लिये बाधित करना है। परंतु होता क्या है—सरकारी कुली बाबुओं का काम करते हैं, और सेवा-समिति अवैतनिक रूप से कुलियों का काम करती है। ठीक यही अवस्था हमारी समाज तथा सनातनधर्म-सभाओं की है। यह सरकारी शिक्षा-प्रचार, जो सरकार का अपना काम है, व्यर्थ अपने सिर लेकर प्रसन्न हो रहे हैं।

आर्य-समाज के विषय में इतना कुछ कहने से मेरा अभिप्राय यह है कि समाज के सभासद सोच देखें कि वास्तव में उनके काम का क्या परिणाम निकल रहा है? हिंदू-जाति पर जो अवस्था बीत रही है, उसे देखते हुए क्या समाज को अपना ढंग बदलने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती? क्या यह कहना अनुचित होगा कि समाज अपनी शक्ति और समय को हिंदू-जाति के हित के लिये व्यय करे तो अच्छा हो।

दूसरी बड़ी संस्था सनातनधर्म-सभा है। बहुत हद तक सनातन-धर्म-सभा आर्य-समाज के मुक़ाबले का ही काम कर रही है। यह

ठीक है कि सनातनधर्म-सभा में प्रायः पुराने विचार के मनुष्य हैं; परंतु क्या वह यह स्वीकार नहीं करेंगे कि हमारी जाति में कई ऐसे अवगुण घुस आए हैं, जो इसे घुन की भाँति खोखला कर रहे हैं। क्या इन व्याधियों को दूर करना सनातनधर्म का कर्तव्य नहीं है? क्या भगवान् कृष्ण यों ही कहते हैं—"जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब मैं उसे उठाने के लिये आता हूँ।" क्या इस समय धर्म की ग्लानि नहीं हो रही? क्या स्मृतियाँ समय-समय पर बदलती नहीं रहतीं? क्या सनातनधर्म-सभा का यही उद्देश्य है कि जो सभा जाति की रक्षा के लिये प्रयत्न करे उसके विरोध में खड़ी हो जाय। यदि सनातन-धर्म-सभा बाल-विवाह को रोकने का और विधवाओं की रक्षा का प्रबंध न करेगी, शुद्धि की दूर ही से प्रशंसा कर अपने हाथ में न लेगी, अछूतोद्धार को अपने हाथों में न लेगी और उन्हें हिंदुओं के पूरे अधिकार न देगी, तो वह याद रक्खे कि वह स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मारेगी। किसी संप्रदाय विशेष को लेकर सनातनधर्म-सभा चल नहीं सकती, ऐसा करने से अन्य संप्रदाय इससे विमुख हो जायँगे। परंतु यदि सनातनधर्म-सभा उपर्युक्त कामों को अपना ले, तो हिंदू-सभा का काम ही सनातनधर्म-सभा का काम बन जायगा और सनातनधर्म-सभा हिंदू-संगठन का एक अंग बन जायगी। परंतु यदि सनातनधर्मी भाई विशेष व्यक्तियों के वैयक्तिक लाभ की इच्छा से फैलाए जाल में फँस, कौंसिलों और म्युनिसिपिल कमेटियों के झगड़ों में फँस जायँगे, तो वे भी उसी बीमारी का शिकार हो जायँगे, जिसका शिकार हमारे मुसलमान भाई बन रहे हैं, या हिंदू-जाति की दूसरी बिरादरियाँ बन रही हैं। इस प्रकार धड़ेबंदी के जनून में सनातनधर्म-सभा जाति के टुकड़े-टुकड़े करके भयंकर पाप की भागी और हिंदुओं के नाश का कारण बनेगी।

तीसरी सस्था हिंदू-संगठन है, जो हिंदुओं को जातीयता के आधार पर एक करने के विचार से चलाई गई है। इसकी हानि जाति की हानि है। हिंदुओं का स्वभाव है कि वे अपने दल या संप्रदाय के लिये पृथक्-पृथक् सब कुछ करने के लिये तैयार रहते हैं, सम्मिलित जाति का काम उन्हें नहीं भाता। फूट, वैमनस्य और अकर्मण्यता का विष हमारे शरीर में बहुत गहरा चला गया है। शरीर से विष को निकालने के लिये इंजेक्शन 'Injection' की आवश्यकता होती है। इस समय नवयुवकों के एक ऐसे दल की आवश्यकता है, जो अपने को इस प्रकार के इंजेक्शन के लिये अर्पण कर दे। यदि हम इस प्रकार का एक दल बना सकें, तो हमारे उद्देश्य में सफलता हो सकती है, और हिंदू-जाति की जीवन-रक्षा भी हो सकेगी।